चन्दामामा
जनवरी १९९५
RS
5

* खुशबूदार प्लास्टिक क्रेऑन्स

नियम व शर्तें

1. इस प्रतियोगिता में 4 से 15 वर्ष के बच्चे भाग ले सकते हैं और यह प्रतियोगिता सिर्फ भारतीय नागरिकों के लिए ही है.
2. जॉन्सन एण्ड जॉन्सन और ओगिल्वी एण्ड मेथर से जुड़े कर्मचारी व उनके सगे संबंधी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते हैं.
3. एक प्रतियोगी जितनी चाहे उतनी एंट्रीस भेज सकता है.
4. हर एंट्री पूरी होनी चाहिए. अधूरी व अस्पष्ट एंट्रीस को गिना नहीं जाएगा.
5. एंट्रीस प्राप्त करने की <u>अंतिम तारीख 28 फरवरी 1995</u> है. पर हाँ, कंपनी, अंतिम तारीख को बढ़ाने या उसे सीमित करने का पूरा अधिकार रखती है.

जॉन्सन एण्ड जॉन्सन

इसमें शामिल होना एकदम सरल है. एक स्ट्रिप [पट्टी] को रंगो और कुछ सरल सवालों के जवाब दो. बस! फिर जीतो कई आकर्षक इनाम.

साथ ही पहले पहुंचने वाली ***1000*** *एंट्रीस के लिए भी इनाम (इसलिए अपनी एंट्रीस आज ही भेजें!)*

1 ला इनाम
पैरिस की यूरो डिज़्नी की सैर तीन दिनों तक, 3 लोगों के लिए

2 रा इनाम
50 स्पोर्ट्स बाइक्स - बी एस ए मंगूस

वीडियोकॉन के 100 वॉकीस

4 था इनाम
एच एम टी की 500 स्पेशल घड़ियां

फ़नस्ट्रिप बनाओ

इस बैण्ड-एड को फ़नस्ट्रिप बनाने के लिए अपनी समझदारी लगाओ. इस पर लिखो, ड्राइंग बनाओ, या इसे रंगो. और इस तरह बनाओ इसे एक मज़ेदार फ़नस्ट्रिप

सही जवाबों पर (✓) निशान लगाओ.

1. एक बैण्ड - एड स्ट्रिप का साइज क्या होता है?
   ☐ 19 मि मी X 72 मि मी ☐ 17 मि मी X 70 मि मी ☐ 21 मि मी X 74 मि मी
2. सिर्फ़ जॉन्सन एण्ड जॉन्सन की बनी बैण्ड - एड पट्टियां ही पूरी तरह से कीटाणुरहित होती हैं.
   ☐ सही ☐ गलत
3. एक बैण्ड-एड फनटेस्ट पैक में कितनी बैण्ड-एड पट्टियां [हर तरह की] आती हैं?
   ☐ 20 ☐ 15 ☐ 30
4. बैण्ड-एड के पैड पर लगी असरदार दवाई क्या है?
   ☐ बोरिक पाउडर ☐ बैन्ज़लकोनियम क्लोराइड ☐ टिंक्चर आयोडिन
5. भारत में, बैण्ड-एड पट्टियों पर वॉल्ट डिज़्नी के कितने कैरेक्टर हैं?
   ☐ 4 ☐ 6 ☐ 2

नाम: ____________________

जन्म: __________ लिंग: __________

पता: ____________________

स्कूल: ____________________

6. कोई भी एंट्री वापस नहीं की जायेगी.
7. जीतने वालों को डाक द्वारा सूचित किया जायेगा.
8. जजों का निर्णय अंतिम और मान्य रहेगा.
9. जॉन्सन एण्ड जॉन्सन कारण बताते/न बताते हुए इस स्कीम को बदलने, रद्द करने या वापस लेने का अधिकार रखती है.
10. सभी एंट्री फार्म साधारण डाक द्वारा इस पते पर भेजे जाने चाहिए: द बैण्ड-एड फनटेस्ट, द्वारा डेटा बेसिक्स, पोस्ट बॉक्स नं. 16605, बंबई-400019.

Ogilvy&Mather 5179 HN
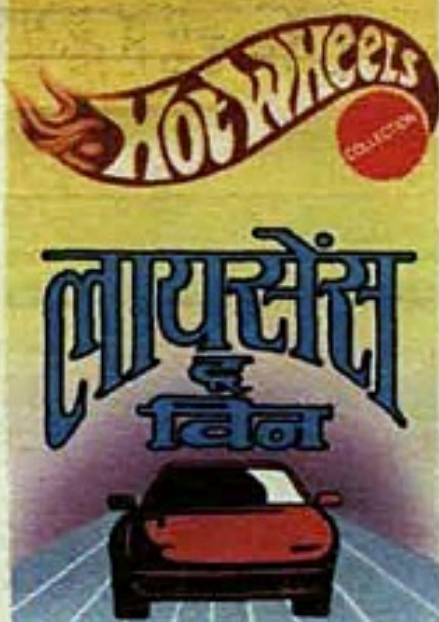
रोमांचक ईनाम आपके नाम

जब आप खरीदेंगे
हॉट व्हील्स कार, ईनाम मिलेंगे कितने शानदार...

2 कार — जीतिए, आपका अपना
ड्राइवर्स लायसेंस

4 कार — **हॉट व्हील्स ट्रम्प कार्ड सेट + बैज**
साथ में ड्राइवर्स लायसेंस

8 कार — **ख़ूबसूरत बेल्ट पाउच + सन वाइज़र**
साथ में हॉट व्हील्स ट्रम्प कार्ड सेट + बैज और ड्राइवर्स लायसेंस

12 कार — **हॉट शॉट मिनी कैमरा**
साथ में बेल्ट पाउच, सन वाइज़र, हॉट व्हील्स ट्रम्प कार्ड सेट + बैज और ड्राइवर्स लायसेंस

अधिक जानकारी के लिए अपने नज़दीक के हॉट व्हील्स विक्रेता से संपर्क कीजिए.

जल्दी कीजिए! यह योजना सिर्फ़ 31 दिसम्बर, 1994 तक.

HTA.2612.95

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

हरियाली और छात्र

बहुत समय पहले, अपने-अपने राज्यों में सर्वप्रथम आये तीस राज्यों के छात्र पर्यावरण संबंधी बैठक में शामिल होने दिल्ली में इकट्ठे हुए। हर कोई छात्र अपने-अपने नक्शों, रेखा-चित्रों, आँकड़ों तथा भाषणों से सन्नद्ध होकर वहाँ उपस्थित हुए। उनमें से हर एक को दूसरे से अधिकाधिक अंक पाने तथा पुरस्कार पाने की आशा थी। उस बैठक के मुख्य अतिथि थे सुंदरलाल बहुगुणा, तो देश के प्रख्यात पर्यावरणवादी हैं। उन्होंने 'चिपको' (पेड़ से चिपको) का आंदोलन शुरु किया। उन्होंने उपस्थित छात्रों से एक सवाल पूछा ''अपने हाथों तुममें से कितनों ने पौधे रोपे ?'' उन्होंने सोचा कि जवाब में सब के हाथ उठेंगे, लेकिन उनको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनमें से किसी का हाथ नहीं उठा। मतलब यह हुआ कि उनमें से किसी ने भी कोई भी पौधा नहीं रोपा।

चीन की एक कहावत है ''अगर साल भर में तुम कुछ पाना चाहते हो तो खेती करो, अगर तुम अपनी संतान को कुछ देना चाहते हो तो एक पौधा रोपो''।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि आजकल जिन-जिन पाठशालाओं में ख़ाली जगह होती है, वहाँ विद्यार्थियों को पौधे रोपने की दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है। उन्हें हर दिन उनको पानी से सींचना पड़ता है तथा उनकी अच्छी तरह से देख-भाल भी करनी पड़ती है।

उड़ीसा के एक आध्यापक ने इस दिशा में एक क़दम और आगे बढ़ाया। उसने अपनी एक विद्यार्थिनी से कहा कि उससे रोपे गये पौधे के पास वह बैठी रहे और गाती रहे। दो ही महीनों में उसमें हुई वृद्धि प्रशंसनीय थी। जब कि तुलना में एक विद्यार्थी के रोपे गये पौधे में उतना विकास नहीं हुआ, जिससे कहा गया था कि वह पौधे के पास बैठकर चिल्लाता रहे।

यों अध्यापक ने प्रमाणित किया कि पौधों में भी प्राणियों की तरह जीवन है, प्राण है।

पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ने तथा भाषणों को सुनने से भी अधिक यह उदाहरण उपयोगी तथा सक्षम प्रमाणित हुआ। पौधों को कैसे रोपा जाए, उनकी कैसी देखभाल हो आदि विवरण जानने से वृक्ष तथा मनुष्य एक साथ विकास कर सकते हैं, जिसमें दोनों की भलाई है। मानव - कल्याण में इन दोनों का सहयोग शुभदायक होगा।

'चन्दामामा' के पाठकों को नव वर्ष की हार्दिक बधाइयाँ।

वर्ष : ४८ | जनवरी १९९५ | अंक : ५

एक प्रति : रु. ५/- | वार्षिक चन्दा : रु ६०/-

समाचार - विशेषताएँ

श्रीलंका में स्थापित नये रिकार्ड

अगस्त १९ को श्रीमती चंद्रिका कुमारतुँगा श्रीलंका की प्रधान मंत्री बनीं। वे दो भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों की पुत्री हैं। यों उन्होंने इतिहास में एक रिकार्ड स्थापित किया है। उनकी उम्र है ४९ वर्ष।

उनके पिता एस. डब्ल्यु.आर.डी. बंडारनायके १९५६ से लेकर १९५९ तक प्रधान मंत्री बने रहे। १९५९ में उनकी हत्या कर दी गयी। उनके मरणोपरांत उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बंडारनायके उस देश की प्रधानमंत्री हुईं। वे विश्व में सर्वप्रथम महिला प्रधान मंत्री हुईं। वे १९६० से १९६५ तक, पुनः १९७० से १९७७ तक दो बार श्रीलंका की प्रधान मंत्री रहीं।

श्रीमती चंद्रिका कुमारतुँगा के प्रधान मंत्री बनने के तीन ही महीनों के अंदर, नवंबर ९ को अध्यक्ष - पद के लिए चुनाव हुए। इस चुनाव में जीतकर श्रीमती कुमारतुँगा ने 'पीपुल्स अलियेन्स दल' की तरफ़ से अध्यक्ष - पद की शपथ खायी। वे श्रीलंका की प्रथम महिला अध्यक्ष हैं।

श्रीमती कुमारतुँगा ने प्रधान मंत्री बनने के बाद, अपनी माँ श्रीमती सिरिमावो बंडार-नायके को अपने मंत्रिमंडल में मंत्री बनाया, किन्तु उन्हें कोई विशिष्ट विभाग सौंपा नहीं गया। हाल ही में जब वे अध्यक्ष चुनी गयीं, तब उनकी माँ प्रधान मंत्री चुनी गयीं।

यों श्रीमती सिरिमावो बंडारनायके तीसरी बार प्रधान मंत्री हुईं। नवंबर १४ को थोड़े-से परिवर्तनों के साथ उन्होंने अपना मंत्रिमंडल बनाया, जिसमें २१ मंत्री हैं।

श्री बंडारनायके श्रीलंका की 'फ्रीडम पार्टी' के स्थापक थे। १९५९ में जब उनकी हत्या की

गयी, तब उनकी पत्नी श्रीमती बंडारनायके ने शासन - भार संभाला। ३५ वर्षों से चले आते हुए उनके राजनैतिक जीवन का यह आरंभ कहा जा सकता है। १९६० में जो आम चुनाव हुए, उसमें उनके पक्ष को भारी विजय प्राप्त हुई। वे देश की प्रधान मंत्री बनीं। १९७० में उन्होंने साम्यवादी पक्षों की सहायता से सरकार बनायी और १९७७ तक उसे क़ायम रखा। १९७७ में उनका मुख्य विरोधी दल 'युनैटेड नेशनल पार्टी' चुनावों में निर्वाचित हुआ। उस दल के नेता जयवर्धन नये संविधान के अनुसार देश के अध्यक्ष चुने गये।

१९८९ में भी 'युनैटेड नेशनल पार्टी' ही जीती। तब तक के प्रधान मंत्री प्रेमदास अध्यक्ष बने। उनके मारे जाने के कारण तत्कालीन प्रधान मंत्री विजयतुंगा अध्यक्ष बने।

१९९३ में 'एस.एल.एफ.सी' ने कुछ और दलों को मिलाकर 'पीपुल्स अलियेन्स' का आयोजन किया। उस पार्टी ने श्रीमती कुमारतुंगा को अपना नेता चुना। उस साल जो प्राँतीय चुनाव हुए, उनमें अधिक आबादीवाले पश्चिमीय प्राँत से वे चुनी गयीं और देश की प्रधान मंत्री बनीं।

श्रीमती चंद्रिका कुमारतुंगा ने, अध्यक्ष - पद स्वीकार करते ही घोषणा की कि अध्यक्ष-पद की पद्धति को समाप्त किया जायेगा और पुनः संसदीय पद्धति अपनायी जायेगी। उन्होंने कहा कि यह मेरे दल का निर्णय है।

शायद जुलाई १९९५ तक ये घोषित परिवर्तन अमल में लाये जाएँगे। तब श्रीमती कुमारतुंगा संपूर्ण अधिकारों के साथ प्रधान मंत्री बनेंगीं और उनकी माँ श्रीमती बंडारनायके अध्यक्ष होंगीं। राजनैतिक परिशीलकों का अनुमान है कि छे-सात महीनों में माँ और पुत्री के पदों में तब्दीली होगी। अगर ऐसा हुआ तो यह भी श्रीलंका से स्थापित किया जानेवाला नया रिकार्ड होगा।

बौनी राक्षसी

शकुंतला के माँ - बाप गुज़र चुके थे। उसकी सौतेली माँ सदा उसे सताती रहती थी। बात - बात पर उसे कोसती थी और पीटती थी। आँखों को चकाचौंध कर देनेवाली उसकी सुँदरता थी। उसे देखकर अनायास ही कोई भी मुग्ध हो जाता था। किन्तु उसकी दोनों सौतेली बहनें विकृत थीं, बदसूरत थीं। इतनी कि कोई देखे तो तक्षण ही आँख पलट ले।

"इस पिशाचिन के कारण ही मेरी बेटियों की शादी नहीं हो पा रही है, पता नहीं, इसका नाश कब होगा" यों दिन में कम से कम एक बार ही सही, उसे गाली देती रहती थी।

उसकी सौतेली माँ ने अपने भाई से परामर्श करके एक कुटिल योजना बनायी। इसके अनुसार शकुंतला की शादी उसी गाँव के एक धनिक बुड्ढे से की जाएगी। शकुंतला को उनके षड़यंत्र का पता लग गया। वह अंधेरा हो जाने पर गाँव के बाहर के इमली के पेडों से भरे बाग़ में गयी।

उस बाग़ में एक बुढ़िया रहती थी। जब वह कभी जंगल में लकड़ियाँ बटोरने जाती रहती थी, तब शकुंतला उस बुढ़िया को देखा करती थी। सब लोग कहा करते थे वह मंत्र-तंत्र जानती है। उसकी बिल्ली की आँखें थीं। माथे पर बड़ी बिन्दी होती थी। उसके ताँबे के रंग के बाल बिखरे हुए होते थे। वह डरावनी लगती थी।

बुढ़िया ने शकुंतला को देखकर कहा "मैने तुम्हें कई बार जंगल में लकड़ियाँ बटोरते हुए देखा है। अंधेरे में यहाँ कैसे चली आयी ?"

शकुंतला ने बुढ़िया को अपना दुखड़ा सुनाया। बुढ़िया ने भी उससे पूछ - पूछकर पूरे विवरण पा लिये। तब उसने कहा "तुम्हारी सौतेली माँ को तुमपर अधिकार चलाने का कोई हक़ नहीं है। मेरी दीदी के मरते तक हम दोनों एक साथ एक ही झोंपड़ी में रहीं। तब से अकेली ही रहती हूँ। जब तक तुम्हें योग्य पति नहीं मिलता, तब तक मेरे ही साथ रहो। तुम्हारी सौतेली माँ ने

राधा वात्सल्या

यहाँ आकर कोई गड़बड़ी की तो उसे वहीं का वहीं जला डालूँगी"।

बुढ़िया शकुँतला की अच्छी देखभाल करती थी। बड़े प्यार से उसके साथ पेश आती थी। शकुँतला घर का सारा काम अकेली ही संभालती थी, इसलिए बुढ़िया को आराम ही आराम था।

बुढ़िया की अपनी एक बैल गाड़ी थी। वह हर महीने जंगल में से दो बोरों की इमली गाड़ी में शहर ले जाती और वहाँ बेचती थी। उन पैसों से अपने लिए आवश्यक सामग्री खरीदती थी। बुढ़िया ने इस बार यह काम शकुँतला को सौंपा। वह इस बार गाड़ी में इमली लादे शहर की ओर निकल पड़ी।

शकुँतला गाड़ी में बैठी जंगल के रास्ते से जाने लगी। अचानक एक बौनी राक्षसी उसकी गाड़ी के सामने आ कूदी और तालियाँ बजाती हुई बोली "वाह, कितनी सुँदर और मनमोहक गुडिया हो"।

हालाँकि वह राक्षसी भयंकर लग रही थी, किन्तु वह बौनी थी। इसलिए धीरज समेटकर शकुँतला ने उससे कहा "राजधानी की हाट में इमली बेचने जा रही हूँ। हट रास्ते से"।

उसकी डाँट से राक्षसी का मुख पीला पड़ गया। उसने बड़ी दीनता से कहा "मेरी प्यारी गुडिया, यों डाँटो मत। मुझे भी अपने साथ हाट ले चलो। मैं नारी हूँ ना, इसलिए सारे के सारे राक्षस मुझे पास पटकने नहीं देते। उन्होंने तो मेरा बहिष्कार कर दिया है। इसीलिए पेड़ पर बैठी एकांत जीवन व्यतीत कर रही हूँ। मैं इस जीवन से ऊब गयी हूँ"।

शकुँतला को उसपर दया आ गयी। उसने कहा "तुम्हें बोरी में बंद करूँगी। ऊपर से रस्सी बाँध दूँगी। हवा खींचने और साँस लेने गोते में कहीं-कहीं छेदें करूँगी। तब तुम्हारी जान को कोई ख़तरा भी नहीं होगा। अब तो तुम संतुष्ट हो ना ऐ बौनी राक्षसी।

"राक्षसी, कहकर क्यों पुकारती हो। मेरा नाम है युवरानी। बोरे में जो छेदें करना चाहती हो, वे मेरी आँखों के पास करो। इससे मैं मानवों को अच्छी तरह से देख पाऊँगी। उन्हें देखकर मैं आनंद लूटना चाहती हूँ" बौनी राक्षसी ने कहा।

शकुँतला जब हाट में पहुँची तो दोनों

बोरियों को पास रखकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी कि एक बोरी इमली का दाम पचास रूपये। दूर से एक मिठाईवाला ज़ोर-ज़ोर से मिठाई, मिठाई कहकर चिल्ला रहा था। यह सुनकर राक्षसी ने कहा "यह मिठाई क्या होती है? मेरे लिए थोड़ा खरीदकर ले आना। देखें, उसका क्या ज़ायका होता है।"

पास ही एक लड़का गुड़ की भेलियाँ बेच रहा था। शकुँतला ने उससे विनती की कि इमली की उसकी बोरियों पर वह नज़र रखे और वह मिठाई खरीदने चल पड़ी।

इस बीच मिठाईवाला चिल्लाता हुआ हाट में दूर चला गया। शकुँतला ने आख़िर उसे ढूँढ निकाला और उससे मिठाई खरीदी। लौटने में आधा घंटा लग गया। आकर देखा तो गाड़ी में बोरे नहीं थे।

शकुँतला घबड़ा गयी। वह जब इधार-उधर ढूँढने लगी तो गुड बेचनेवाले उस लड़के ने एक सौ पचास रुपये उसके हाथ में रखे और कहा "बिना किसी तक़लीफ के तुम्हारी इमली बिक गयी। राजा के कुछ सैनिक आये थे और पूरा माल खरीदकर ले गये। सबेरे - सबेरे राजकुमारी का ब्याह होनेवाला है ना?"

यह सुनकर शकुँतला का बदन पसीने से भीग गया। बेचारी बौनी राक्षसी ने उसका विश्वास किया और उसके साथ चली आयी। अब मालूम नहीं, सैनिक उसपर कितना अत्याचार करेंगे। हो सकता है, अपने भालों और बर्छियों से उसकी

छलनी कर दें या सजीव ही उसे जला डालें। ऐसा सोचते ही वह भय से काँप उठी।

शकुँतला तक्षण ही राजमहल चल पड़ी। उसने वहाँ जाकर देखा कि कुछ औरतें और मर्द तरकारियाँ तथा अन्य सामग्रियों से भरे बोरों को सिर पर लादे जा रहे हैं। वे राजमहल के पीछे के बगीचे के पास ही की एक खुली जगह में उन बोरों को उतार रहे हैं। वह भी एक बोरे को अपने सिर पर लादे उनके साथ-साथ गयी। उसने एक कोने में देखा कि इमली के उसके बोरे भी वहाँ हैं।

उसने बोरा सिर से उतारा और चुपके से उस कोने में गयी। वहाँ पहुँचकर उसने धीरे से युवरानी, युवरानी कहकर पुकारा।

एक बोरे में से राक्षसी ने कहा "मिठाई ले

आयी?'' राक्षसी को सुरक्षित पाकर शकुंतला ने लंबी साँस खींची और कहा ''युवरानी, अब अकस्मात् हम दोनों बड़ी विपत्ति में फँस गयी हैं। हम अब हैं राजप्रासाद के पीछे। अंधेरा हो जाने पर यहाँ से भाग जाने का रास्ता ढूँढूँगी। जब तक मैं तुम्हारा नाम लेकर नहीं पुकारूँगी, तब तक तुम बोरे में ही बिना हिले - डुले चुपचाप पड़ी रहो। बच जाएँ तो तब मिठाई खाना'' कहकर उसने बोरे के ऊपर की बँधी रस्सी खोल दी और वहाँ से निकल पड़ी।

सूर्यास्त हो गया था। अभी - अभी अंधेरा छा रहा था। शकुंतला भाग जाने का रास्ता ढूँढ़ रही थी। जब वह बग़ीचे में गयी तोउसने देखा कि एक युवती वहाँ उदास बैठी हुई है। उसके वस्त्रों को देखकर उसने ताड़ लिया कि वह अवश्य ही राजकुमारी होगी। उसने उससे पूछा ''सबेरे आपकी शादी होनेवाली है और आप यहाँ उदास बैठी हैं। मैं समझती हूँ, अपको यह शादी क़तई पसंद नहीं। है ना?''

राजकुमारी चौंक उठी और बोली ''तुम कौन हो ? कैसे जान गयी कि यह शादी मुझे पसंद नहीं ?''

शकुंतला मुस्कुराती हुई बोली ''एक महीने के पहले मेरी भी यही हालत थी। उस नापसँद शादी से बचने के लिए ही मैं घर से भाग निकली''।

यह सुनते ही राजकुमारी की आँखों में आँसू आ गये। उसने प्रेम किया था एक युवशिल्पी से, जो देवी के मंदिर में मूर्तियों को तराशता था। यह बात अपने माँ-बाप से बताने का उसमें साहस नहीं था। अपने माँ-बाप के आज्ञानुसार एक देश के युवराज से उसे शादी करनी पड़ रही है।

''ऐसी शादी करने से क्या फ़ायदा ? अगर अपने माँ-बाप से अपनी अनिच्छा बताने से डर रही हों तो सीधे उस राजकुमार से ही बता दीजिये कि यह शादी मुझे पसंद नहीं''। शकुंतला ने सलाह दी।

शकुंतला की सलाह राजकुमारी को सही लगी। उसने अपनी अंगूठी शकुंतला को देते हुए कहा ''इसे पहनने पर राजमहल में कहीं भी आ जा सकती हो। कैसे भी हो, सिंहपुरी के राज-कुमार को यहाँ ले आना''।

शकुंतला थोड़ी देर सोचती रही और फिर बोली "यहाँ ले आते हुए शायद कोई देख ले। पिछवाड़े में खाद्य सामग्री पड़ी है। वहाँ जाकर किसी कोने में छिप जाइये। मैं युवराज को वहाँ भेज दूँगी"। कहकर वह वहाँ से निकल पड़ी। उसने पहरेदारों को अँगूठी दिखायी और बेरोकटोक युवराज के अतिथि-गृह में पहुँची।

उसने दूसरों की आँखों से बचाकर युवराज को राजकुमारी की अँगूठी दिखायी और कहा "राजकुमारी तक्षण ही आपसे किसी मुख्य विषय पर बात करना चाहती है। आप मेरे साथ चलिये"। वह उसे अपने साथ ले गयी और वह जगह दिखायी, जहाँ राजकुमारी छिपी थी। स्वयं एक पेड़ के नीचे खड़ी हो गयी।

युवराज थोड़ी ही देर में लौटा। उसकी आँखें क्रोध से लाल थीं। वह शकुंतला के पास आया और पूछा "तुम्हारा क्या नाम है?" ड़रती हुई शकुंतला ने कहा "शकुंतला"।

"देखो शकुंतला, तुम मुझे बहुत अच्छी लगी हो। मुझसे मत पूछना कि राजकुमारी मुझे कैसी लगी? उसी मुहूर्त पर तुम मुझसे शादी करोगी? तुम गंधर्व कन्या की तरह अतिसुंदर लग रही हो। मुझे बहुत ही अच्छी लग रही हो" युवराज ने कहा।

युवराज राजसिंह की बातें सुनकर वह अवाक् रह गयी। उसने अपना परिचय दिया और कहा "किसी भी दृष्टि से मैं आपके योग्य नहीं हूँ"।

"तुम्हारी अस्वीकृति से ही मालूम हो जाता है कि तुम कितनी सद्गुणी और सुशील हो। मेरा तो यह अटल निश्चय है कि मैं तुम्ही से शादी करूँगा"। राजसिंह ने कहा।

क्षणों में यह बात अंत:पुर में फैली। राजदंपति को इस बात पर दुख हुआ कि क्यों उसकी बेटी ने अपने प्रेम की बात उनसे छिपायी। उन्होंने अपना कर्तव्य जाना और उसी मुहूर्त पर अपनी बेटी की शादी शिल्पी से और शकुंतला की शादी युवराज से करायी।

राजा शकुंतला से बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उससे कहा "तुमने मेरी बेटी को बचा लिया, अथवा मालूम नहीं, वह क्या कर बैठती। बोलो, तुम्हें क्या चाहिये?"

"महाराज, खाद्य सामग्री जहाँ रखी गयी है, वहाँ मेरे दो बोरे हैं। उनमें से एक बोरा मुझे दिलवाइये। अलावा इसके, मैं और कुछ नहीं चाहती"। शकुंतला ने अपनी इच्छा प्रकट की।

उसकी इच्छा सुनकर सब लोग आश्चर्य में डूब गये। राजा ने उसे उस बोरे को ले जाने की अनुमति दी।

उस बोरे को शकुंतला ने रथ में रखवाया, जिसमें बौनी राक्षसी थी। उस बरगद के पेड़ के पास उसने रथ रुकवाया, जो राक्षसी का निवास-स्थल था। उसने कहा 'युवरानी, तुम्हारे निवास-स्थल पर हम पहुँच गये हैं। बोरे से बाहर आ जाना। अब हमें कोई ख़तरा नहीं है"।

बोरे से प्रकट हुई बौनी राक्षसी को देखकर यूवराज भौंचक्का रह गया और बोला "तुम्हारा नाम युवरानी है?"

'हाँ' कहती हुई राक्षसी ने सिर हिलाया। एक छलाँग मारकर पेड़ की टहनी पर जा बैठी।

घटना असल में यों घटी। रात के अंधेरे में जब युवराज ने दो बार "युवरानी, युवरानी" कहकर पुकारा था, तो राक्षसी प्रकट हुई।

उसे देखकर युवराज को लगा कि उसके साथ धोखा हुआ है। उसने सोचा कि दिन में राजकुमारी है और रात में वही राजकुमारी राक्षसी के रूप में परिवर्तित होती है। इस कल्पना मात्र से वह क्रोधित हो उठा। इसीलिए उसने शकुंतला से विवाह रचाने का निर्णय लिया।

जो हुआ, सब कुछ उसने शकुंतला से कहा और कहा "इस बौनी राक्षसी की कृपा से हम दोनों विवाह - बंधन में बंध गये। अपने इस पुण्य - कार्य से अवश्य ही वह अगले जन्म में राजकुमारी का जन्म लेगी।"

फिर उसने शकुंतला से कहा "मुझसे विवाह करके तुमने राजकुमारी के जीवन की भी रक्षा की है। वह तो इस विवाह के बिल्कुल विरुद्ध थी। शिल्पी को वह चाहती थी। उसी से विवाह रचाने का उसका उद्देश्य था। इस सत्य से अपरिचित मैं उससे विवाह करता तो राज-कुमारी का जीवन नरक बन जाता। मेरे जीवन का आनंद भी लुट जाता। दांपत्य सुख से हम दोनों वंचित रह जाते। तुमने तो मुझे एक नया जीवन प्रदान किया है।"

(ट्रोय नगर में संपन्न होनेवाली स्पर्धाओं में मोहन ने भाग लिया और विजयी हुआ। वहाँ राजा वर्धन को ज्ञात हो गया कि मोहन कोई और नहीं, अपना ही बेटा है। भुवनसुँदरी को पाने के लिए मोहन हर दिन कामिनी की पूजा करता था। एक ऐसा अवसर आया, जब कि उसे स्पार्टा जाना पड़ा, जहाँ भुवसुँदरी रहती है। वह उसी के घर में उसके पति प्रताप का अतिथि बनकर रहा। जब प्रताप किसी आवश्यक काम पर दूसरे राज्य में गया हुआ था, तो मोहन भुवनसुँदरी को लेकर नाव में ट्रोयनगर ले आया और उससे शादी की। वह भी उसे चाहती थी। ग्रीकों ने दूतों के द्वारा भुवनसुँदरी को वापस भेजने का प्रस्ताव रखा। किन्तु वह प्रस्ताव तिरस्कृत हुआ।) -बाद

भुवनसुँदरी को वापस ले आने का प्रयत्न जब विफल हुआ तो प्रताप ने समस्त ग्रीक राजाओं को समाचार भेजा। उसने उन्हें कहला भेजा "भुवनसुँदरी ने जब मुझे स्वयंवर में अपने वर के रूप में चुना, तब आप सब लोगों ने प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञा के अनुसार आप सब लोग इस गंभीर स्थिति में मेरी सहायता करें"। उसने दूतों द्वारा केवल कहला ही नहीं भेजा, बल्कि पूरे ग्रीक देश का पर्यटन किया। वह हर राज्य में गया। हर राजा से मिला और उनसे कहा कि अपनी सेना-सहित आप मेरे पक्ष में युद्ध में भाग लीजिये। उसने उन सबको सविस्तार समझाया कि मोहन ने उसके साथ कितना छल-कपट किया है। उसने उनसे कहा "मैं युद्ध के ख़िलाफ़ हूँ। रक्त-पात मुझे क़तई पसंद नहीं। दोनों देशों को इससे अपार नष्ट होगा। अनावश्यक प्राण-हानि पाप है। मैने स्वयं मोहन के पिता राजा वर्धन को ये सारी बातें समझायीं।

उनसे प्रार्थना की कि भुवनसुंदरी लौटा दी जाए। जो हुआ उसे भुला दिया जाए। पर मोहन का बाप टस से मस ना हुआ। उसने भुवनसुँदरी को लौटाने से इनकार कर दिया। संधि के मेरे सारे प्रयत्न विफल हो गये। इस स्थिति में युद्ध के अलावा कोई और चारा न रहा। आप लोग मेरा साथ दीजिये। मैं आपकी सहायता से जो विजय पाऊँगा, वह सत्य और न्याय की विजय होगी।"

प्रताप और उसका भाई राराजा दोनों स्वयं इथाका के राजा रूपघर से मिले। रूपघर पहले ही निर्णय ले चुका था कि मैं इस युद्ध में भाग नहीं लूँगा। इस निर्णय के पीछे प्रबल कारण भी था। अशरीरवाणी ने घोषणा की थी कि युद्ध से लौटते वक्त उसे अनगिनत कष्टों का सामना करना पड़ेगा और बीस सालों तक वह घर भी लौट नहीं आ पायेगा।

रूपघर ने इसी कारण युद्ध में भाग लेने से अपने को बचाने के लिए एक कुटिल चाल चली। उसने किसान का वेष पहन लिया। एक बैल और एक गधे को बाँधकर वह हल चलाने लगा। खेतों में स्वयं नमक छिड़कता जा रहा था। उसकी पत्नी पद्ममुखी शिशु को लिये पास ही खड़ी थी।

रूपघर ने केवल वेष ही नहीं बदला, बल्कि वहाँ आये हुए प्रताप और राराजा को ना पहचानने का नाटक किया। किन्तु उन दोनों पर इस नाटक का कोई असर नहीं हुआ। वे उसे पहचान गये। उन्होंने पद्ममुखी से उस शिशु को बलपूर्वक खींचा और उसे हल के सामने डाल दिया। रूपघर ने तुरंत हल चलाना रोक दिया, जिससे यह साबित हो गया कि ना ही वह किसान है और ना ही पागल। आख़िर उसे युद्ध में भाग लेना ही पड़ा।

हाँ, युद्ध में भाग लेनेवाले बहुत से राजा ट्रोय नगर आये थे, किन्तु उनमें से कुछ ऐसे भी थे, जो तहेदिल से युद्ध में भाग लेने की इच्छा नहीं रखते थे। एक राजकुमार ने तो पचास युद्ध-जहाज़ों को भेजने का वादा किया था, पर उसने भेजा एक ही जहाज़। बाकी उन्चास जहाज़ उसी एक जहाज़ में थे। वे सारे के सारे मिट्टी से बने जहाज़ थे।

ग्रीकों ने ज्योतिष-शास्त्र के द्वारा जान लिया था कि वज्रकाय नामक युवक की सहायता के बिना ट्रोयनगर उनके वश में नहीं आयेगा। वह

तरनी नामक एक स्त्री का सातवाँ पुत्र था। उसका संकल्प था कि उसका बेटा संसार का श्रेष्ठ योद्धा बने, इसलिए उसने शिशु की ऍड़ी को स्टिक्स नदी में डुबोया। इस कारण उसका शरीर वज्र की तरह दृढ़ बना।

वज्रकाय अपने बचपन में ही आखेट करता था, तेज़ दौड़ता था, धैर्य-साहस में असमान था, उत्तम कोटि का संगीतज्ञ था। लोग ऐसे विलक्षण बालक की प्रशंसा करते थकते नहीं थे। छे साल की उम्र में ही उसने जंगली सुवर को मारा था। हिरन व बारहसिंगा का जब शिकार करता था तो उनके साथ-साथ दौड़कर उन तक आसानी से पहुँच पाता था।

युद्ध में वज्रकाय का स्वागत करने के लिए रूपधर, भूधव व नवोद्युत स्वयं गये। उसकी माँ तरनी को मालून था कि युद्ध में जाने पर उसका बेटा सजीव लौट नहीं आयेगा। उसने अपने बेटे को स्त्री के कपड़े पहनाये, उसकी रूप - सज्जा भी स्त्री की तरह की और उसे एक राजा के अंत:पुर में छिपाया।

वज्रकाय के लिए आये हुए उन सबों ने सब पुरुषों में उसे ढूँढ़ा, उनसे मिले। लेकिन उनमें वज्रकाय नहीं था। रूपघर को संदेह हुआ कि स्त्री के वेष में वह कहीं छिपा हुआ है। उसे बाहर निकालने के लिए रूपघर ने एक चाल चली। उसने अंत:पुर की स्त्रीयों को क़ीमती तोहफ़े दिये। वे तोहफ़ें एक स्थल पर रखे गये और अंत:पुर की स्त्रीयों को ख़बर भेजी गयी कि वे आकर

इन्हें अपनी - अपनी रुचि के अनुसार ले जावें। स्त्रीयाँ जब अपने लिए आवश्यक चीज़ों को ढूँढ़ने में लगी रहीं तब रूपधर की आज्ञा के अनुसार राजभवन के बाहर भेरियाँ बजीं। उस निनाद को सुनते ही वज्रकाय ने अपना स्त्री-वेष निकाल दिया और बर्छी तथा भाल को हाथ में ले लिया। तक्षण रूपधर ने वज्रकाय को पहचान लिया और उसे पकड़ लिया। वज्रकाय ने युद्ध में भाग लेने की स्वीकृति दी।

ग्रीक के जहाज़ औलिस के पास सन्नद्ध थीं। क्रीट से आये हुए दूत अपने राजा का संदेश ले आये। क्रीट के राजा प्रभु ने संदेश भेजा था कि राराजा के साथ उसे भी सेनाध्यक्ष बनाया जाए तो वह अपने सौ जहाज़ों के साथ युद्ध में भाग

लेने के लिए तैयार है। प्रभु भुवनसुँदरी के स्वयंवर पर गये हुए राजकुमारों में से एक था। कहा जाता था कि वह बहुत ही सुन्दर युवक था। उसका सुझाव स्वीकार किया गया। वह सौ जहाज़ों को लिये निकल पड़ा। यों प्रताप और उसका भाई राराजा अपने लक्ष्य में सफल हुए। वे जानते थे कि शत्रु भी बलशाली है। उसका सामना करने के लिए पर्याय स्थल-सेना, नौसेना आदि की आवश्यकता है। ऐसे योद्धा भी चाहिये, जो युद्ध-कला के विभिन्न भागों में कुशल हैं। और अब वे इससे संतुष्ट हैं कि ऐसे योद्धाओं को सम्मिलित करने में वे सफल हुए। समस्त ग्रीक राजा वचन-बद्ध भी थे। क्योंकि उन्होंने भुवनसुंदरी के स्वयंवर के अवसर पर प्रतिज्ञा भी की थी कि हर हालत में उसके पति प्रताप का वे साथ देंगे। उनमें से कोई भी ऐसा युवराज नहीं था, जिसने भुवनसुँदरी को ना चाहा हो। अलावा इसके, सब महसूस भी कर रहे थे कि प्रताप के साथ अन्याय हुआ है। उनकी दृष्टि में मोहन दुष्ट, अन्यायी और स्वार्थी है। उनका सर्वमत अभिप्राय था कि किसी की दूसरे पत्नी को छीन ले जाना पाप हैं। इसी कारण प्रताप इतना सैनिक-बल इकट्ठा कर पाया और अनेकों ग्रीक राजाओं की सहायता प्राप्त कर पाया।

युद्ध के लिए सन्नद्ध ग्रीक पक्ष के योद्धाओं की स्थिति यों थी।

सर्वसेनानी था राराजा। उसके अधीन उप-नायक थे रूपधर, प्रबोध, देवमय। जहाज़ों पर आधिपत्य था वज्रकाय का। उसके अधीन-उपनायक थे भूधव, रक्तवर्ण, पीलसे का राजा

नवोच्युत। यह वृद्ध राजा था। उसका युद्ध-कौशल अद्वितीय व असमान था। विवेकी भी उत्तम कोटि का था। तीन पुश्तों तक यह शासन सुचारू रूप से चलाता रहा। यह पितामह वृद्धावस्था में भी रणरंग में प्रचंड था। रारांजा उसकी सलाह लिये विना कोई भी चाल चलता ही नहीं था, एक भी क़दम आगे नहीं बढ़ाता था। युद्ध-संबंधी समस्याओं के विषय में नवोच्युत तथा रूपधर की सलाहों और सुझावों में कोई भेद ही नहीं होता था। क्योंकि समस्याओं के परिष्कार के संबंध में उनके विचारों में संपूर्ण साम्य होता था।

भूधव अतिरथियों में से एक गिना जाता था। साहस और बल में वज्रकाय के बाद वही माना जाता था। वह देवताओं की भी परवाह नहीं करता था। अपनी शक्ति में उसे संपूर्ण विश्वास था। जब वह युद्ध करने निकला तब बड़ों ने उसे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया "पुत्र, रणरंग में अपने पराक्रम का प्रदर्शन करना और देवताओं की सहायता से विजय प्राप्त करना"। उसने उनका खंडन करते हुए कहा "देवताओं की सहायता से तो कायर और अशक्त भी विजय प्राप्त करेंगे। मैं तो उनकी सहायता के बिना ही विजय प्राप्त करूँगा, शत्रुओं के छक्के छुड़ाऊँगा।"

उपभूधव भूधव का रिश्तेदार नहीं था। वह बर्छी चलाने में असमान था। ग्रीक सेना में उसकी तरह तेज़ बर्छी चलानेवाला और निशानेबाज़ कोई था ही नहीं। दौड़ में उसके सामान कोई था तो वह केवल वज्रकाय था।

देवमय ने भुवनसुँदरी को बहुत चाहा था। भुवनसुँदरी को ले जाने की वजह से मोहन पर

उसका विशेष क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना थी। इसीलिए बदला लेने के लिए वह भी युद्ध में भाग ले रहा था।

डिलोस के राजा मुष्कर ने ग्रीक सेनाओं के लिए आवश्यक खाद्य सामग्री भेजी। जहाज़ों के निकलने के पहले राराजा ने देवताओं को संतृप्त करने के लिए आवश्यक व उचित पूजाएँ कीं, बलियाँ चढ़ायीं। कौशक नामक एक दैवज्ञ की नियुक्ति भी हुई, जो जहाज़ों को दिशा-मार्ग दिखावे। सच कहा जाए तो कौशक समुद्र-मार्ग से अपरिचित था। इसलिए कहना तो यह पड़ेगा कि ग्रीक के जहाज़ सही मार्गदर्शक के अभाव में ही निकल पड़े। इस कारण ट्रोय समुद्री - तट पर पहुँचने के बदले वे दक्षिण के मीसिया तट पर पहुँचे। ग्रीक सेना ने ग़लत समझा कि हम ट्रोय - तट पर पहुंच गयीं। वे उस राज्य पर टूट पड़ी और लूटने लगीं। जब मीसिया राजा को इसका पता चला तो उसने ग्रीकों पर धावा बोल दिया। फलस्वरूप जो युद्ध हुआ, उसमे बहुत-से ग्रीक सैनिक घायल हुए। समय पर अगर वज्रकाय ना आता और उनकी सहायता ना करता तो ग्रीक अवश्य ही हार जाते, विफल होते।

किन्तु एक वर्ष के अंदर ही ग्रीक की सेना ट्रोय पर हमला करने के लिए पुनः सन्नद्ध हो गयी। बहुत दिनों तक वातावरण उनके अनुकूल ना रहा। जब आख़िर उन्होंने देवताओं को बलियाँ चढ़ायीं, तब वातावरण में परिवर्तन हुआ। जहाज़ निकल पड़े। लंबी यात्रा के बाद लेस्पोस द्वीप के तट पर प्रथम बार पहुँचे। इस द्वीप के शासक ने ग्रीकवीरों का स्वागत किया; उन्हें आतिथ्य दिया। अपने अतिथियों को अपने साथ मल्लयुद्ध करने का आह्वान दिया। वह स्वयं मल्लयुद्ध में बहुत ही निपुण था। ग्रीकों का प्रतिनिधि बनकर रूपधर उससे मल्लयुद्ध करने आगे बढ़ा। उस युद्ध में उसने उस राजा को आसानी से हरा दिया। इस जीत से ग्रीक बहुत ही आनंदित हुए। उन्होंने लेस्पोस तट छोड़ दिया और कुछ दिनों के बाद टेनिटोस तट पर पहुँचे। देनेटोस द्वीप ट्रोयनगर से बीस मील की दूरी पर था। ट्रोय के किले की दीवारों पर चढ़कर देखें तो वह द्वीप दिखायी पड़ता है। शेष सब लोगों को उसी जगह पर छोड़कर रूपधर,

भुवनसुंदरी का पति प्रताप तथा प्रबोध समझौता करने ट्रोय नगर पहुँचे। वहाँ पहुंचकर उनसे वार्तालाप करने का उनका उद्देश्य यही था कि बिना युद्ध के भुवनसुंदरी उनके सुपुर्द की जाए। परंतु ट्रोय नगरवासी ठान चुके थे कि किसी भी हालत में भुवनसुंदरी उनके सुपुर्द नहीं की जाएगी। ग्रीकों का दौत्य असफल हुआ। राजदूतों को मार डालने के प्रयत्न भी हुए। जिस गृह में अतिथि बनकर वे ठहरे थे, उस गृह के यजमान ने इस हत्या-कांड को रोका और स्पष्ट उनसे कहा कि दौत्यों को मारना नीच काम है और मेरे ज़िन्दा होते हुए यह काम मैं होने नहीं दूँगा।

जब दौत्य विफल हुआ, तब ग्रीक जहाज़ टेनेटोस द्वीप से निकलकर ट्रोय तट पर पहुँचे। तट से ट्रोय के क़िले की दीवारें दिखायी दे रही थीं। ग्रीकों के जहाज़ों के पहुँचने की ख़बर सुनकर ट्रोय नागरिक समुद्री तट पर आये। उन्होंने उनपर पथ्थर फेंके। उन्हें वापस भेजने की बहुत कोशिशें कीं। लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

परंतु अब सम्मिलित सेना के सम्मुख एक गंभीर समस्या उठ खड़ी हुई। ट्रोय की भूमि पर पहले-पहल कौन क़दम रखे? इस समस्या का प्रबल कारण था। ज्योतिषियों के कहे अनुसार जो योद्धा ट्रोय की भूमि पर प्रथम क़दम रखेगा, उसकी मृत्यु निश्चित है। और यह मृत्यु किसी भी स्थिति में टाली नहीं जा सकती। इस ज्योतिषवाणी में ग्रीकों को पूरा विश्वास था। इसीलिए वज्रकाय जैसा योद्धा भी ट्रोय की भूमि पर उतरने के लिए डर रहा था। चंद्रप्रभु ने पहले पहल यह साहस किया। वह नौका से उतरा और जैसे ही भूमि पर क़दम रखा, युद्ध प्रारंभ कर दिया। उसने अनेकों शत्रुओं को मार भी डाला। वीरसिंह ने उसे मौत के घाट उतार दिया।

चंद्रप्रभु के बाद वज्रकाय नौका से कूदा। उसके साथ-साथ उसकी सेना भी उतरी। वज्रकाय ने चंद ट्रोय वीरों को मार डाला, जिसके कारण वे छिन्नाभिन्न होकर नगर की तरफ़ भाग गये।

इस बीच ग्रीक सैनिक उत्साह से चिल्लाते हुए जहाज़ों से कूदकर किनारे पर पहुँचे।

-सशेष

रेशा निकालने मे निपुण

साधारणतया नारियल के रेशे को निकालने के लिए चाकू, छेनी जैसा साधन चाहिये। उस साधन से नारियल के चारों ओर सीधी गहरी लकीरें खींची जाती हैं और रेशा निकाला जाता है। इसमें प्रयत्न चाहिये और समय भी लगता है। लेकिन केरल के कालिकट का युवक जोस बिना किसी साधन के अपने दाँतों से रेशा २० पलों में निकाल देता है। सूखा नारियल हो तो तीस पल लगते हैं। ३२ वर्ष का जोस 'विज्ञापन' फिल्मों का निर्माता है। उसने 'गिन्नीस बुक आफ़ रिकार्ड्स' के प्रकाशक को लिखा था कि वे अपनी पुस्तक में उसके नैपुण्य के बारें में लिखें।

आज का कामधेनु

हरिद्वार के एक आश्रम में 'श्यामा' नामक एक गाय है। वहाँ के लोग उसे 'कामधेनु' कहकर पुकारते हैं। क्योंकि गत आठ सालों से वह लगातार दूध देती आ रही है। १९८० में जब ब्यायी तब ३५ - ४० लिटर दूध देती थी। १९८२ तथा १९८४ में दो बछड़ों को इसने जन्म दिया। तब से कभी नही ब्यायी। किन्तु वह बराबर दूध देती रही। अब वह सत्रह साल की है। फिर भी बुढ़ापे के कोई लक्षण उसमें दिख नहीं रहे हैं। अब भी हर रोज़ वह ६ से लेकर १५ लीटरों का दूध देती रहती है। उसके प्रथम बछड़े की उम्र १३ साल हैं। उसके तो दाँत भी उखड़ गये हैं और वह बूढ़ा लगता है।
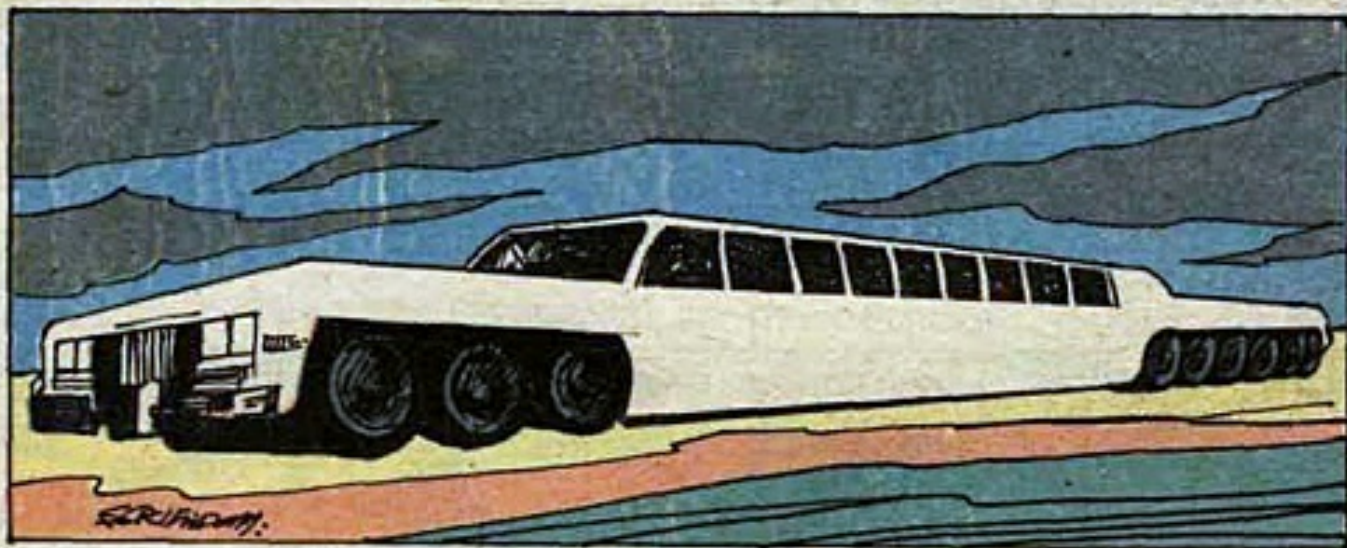
लंबी मोटरकार

संसार की सबसे अधिक लंबी मोटरकार लंदन के 'राफ़ म्यूज़ियम' में है। १९८२ की 'काडलाक' कही जानीवाली इस मोटरकार की लंबाई २२ मीटरें हैं। पाँच मंजिलों की इसकी ऊँचाई है। इसका वज़न सात टन है। मामूली सड़कों पर जाने से यातायात में यह रुकावट शायद बने, इसीलिए आजकल यह इस्तेमाल में नहीं लायी जा रही है। स्थल के अभाव के कारण म्यूज़ियम के अधिकारी इसे बेचना चाहते हैं। इसको वहाँ रखने से वे म्यूज़ियम का विस्तार भी नहीं कर पा रहे हैं। मालूम नहीं, इसे कौन ख़रीदेगा?

दुश्मन - दुश्मनी

घुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड़ के पास गया। शव को पेड़ से उतारा। उसे अपने कंधों पर डाल लिया और यथावत् श्मशान की ओर बढ़ता हुआ जाने लगा। तब शव के अंदर के बेताल ने कहा ''राजन्, बताओ तो सही कि क्या अब तक कभी अपने इस प्रयत्न में सफल रहे? मैं मानता हूँ कि अपनी कार्य - सिद्धि के लिए तुममें जो लगन है, निष्ठा है, प्रशंसनीय है। किन्तु अपने लक्ष्य की सफलता के बाद तुम्हारा व्यवहार कैसा होगा, तुम्हारा रुख क्या होगा, तुम्हारे बरताव में क्या-क्या परिवर्तन आयेंगे, इसका मुझे संदेह है। अपने किसी पराक्रमी तथा बलिष्ठ शत्रु को मारने के लिए कोई अलौकिक शक्ति पाने की इच्छा रखते हो तो मैं तुम्हें जागरूक करना चाहता हूँ, तुम्हें सावधान करना चाहता हूँ। हर व्यक्ति जिस लक्ष्य को साधना चाहता है, उसे साधने के लिए पर्याप्त परिश्रम करता है। हर तक़लीफ़ का सामना करके अपने कार्य में सफल होता है। किलु जैसे ही लक्ष्य प्राप्त

बैताल कथा

कर लेता है, ढ़ीला पड़ जाता है। उसमें वह फुर्ती नहीं होती। फल का सदुपयोग नहीं करता। मेरा विचार है कि फल मिलने के बाद भी उसके सदुपयोग के लिए उसी प्रकार का परिश्रम उसे करना चाहिये, उसी लगन के साथ काम में जुटा रहना चाहिये। उसी धुन के साथ-साथ विवेक से बरतना होगा। उसमें समय-स्फूर्ति की नितांत आवश्यकता है। ये गुण नहीं हों तो फल ना पाने के समान है, फल पाकर भी व्यर्थ है। उसका किया सब मिट्टी में मिल जायेगा। उदाहरण के लिए विवेक नामक एक युवक की कहानी सुनाऊँगा। अपनी थकावट दूर करते जाओ और मेरी कहानी ग़ौर से सुनते जाओ'' बेताल उसकी कहानी यों सुनाने लगा।

विवेक अपने पिता योचन का इकलौता बेटा था। पिता की ही तरह वह भी सद्‌गुणी था। अपने पिता को अपनी जान से भी ज़्यादा चाहता था।

पचास साल की उम्र में योचन दिल की बीमारी का शिकार हुआ। वैद्य ने उसकी परीक्षा की और कहा ''तुम्हें विश्राम करना चाहिये। सारी जिम्मेदारियाँ अपने बेटे को सौंपो और प्रशांत रहो।

वैद्य के कहे अनुसार अपने पिता के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए प्रशांत ने सारी जिम्मेदारियाँ अपने कंधे पर डाल लीं। एक सप्ताह भी नहीं हुआ, पड़ोस के गाँव से जगन आया और उससे मिला। उसने विवेक से कहा ''मैं तुम्हारे बड़े चाचा का बेटा हूँ। तुम्हारे पिता ने मेरे पिता की जायदाद हड़प ली। हमें धोखा दिया। इससे हम लोगों का सर्वनाश हो गया, हम कहीं के ना रहे। अब मेरी सहायता करना, इस आड़े वक़्त पर मेरा साथ देना तुम्हारा धर्म है''।

विवेक उसकी इन बातों से चकित रह गया। उसने कहा ''मेरे पिताश्री तो परोपकारी हैं। अच्छे काम करने में वह सदा आगे रहे। तुम्हारी मदद ज़रूर करूँगा। ऐसा करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यह बात सरासर झूठ है कि मेरे पिता ने तुम्हारे पिता को धोखा दिया है। यह सत्य स्वीकार करो। कहो कि तुम्हारा आरोप आधारहीन और असत्यपूर्ण है।''

''सच क्या है और झूठ क्या? इसका निर्णय तुम्हारे पिता के सामने ही साबित करूँगा।

चलो, दोनों तुम्हारे पिता के पास चलेंगे'' जगन क्रोधित होता हुआ बोला।

''पिताश्री दिल के बीमार हैं। ऐसे समय पर उनसे ऐसी बातें करना और उनकी मानसिक शांति को भंग करना अनुचित है। पिताश्री के सब भाइयों से स्वयं मिलूँगा और इस विषय पर उनके विचारों को जानूँगा। उनसे सारी बातें काग़ज़ पर लिखवा लाऊँगा। तब पता चल जाएगा कि सच्चाई क्या है? तब तक मेरे पिताश्री से तुम मिलोगे नहीं।'' कहते हुए विवेक वहीं से निकल पड़ा।

जगन बड़ा ही दुष्ट था। उसके पिता भी उसके स्वभाव से बहुत ही ऊब गये थे, इसलिए वह घर से निकाल दिया गया। विवेक जब अपने चाचा के पास गया और जो हुआ, उसे बताया तो वह बहुत ही दुखी हुआ। अपने बेटे की इस काली करतूत से शर्मिंदा भी हुआ। उसने लिखकर दिया कि उसके बेटे का आरोप झूठा है और उसका भाई बहुत ही अच्छा इन्सान है। अपने स्वार्थ के लिए लगाये गये बेटे के आरोपोंकी उसने भत्सना की।

इसी तरह दूसरे और दो चाचाओं ने भी लिखकर दिया। उन्हें लेकर बड़े उत्साह से वह प्रतापपुर पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर उसे मालून हुआ कि इस बीच ऐसी दुर्घटना घटी, जिसकी जानकारी पाकर उसका हृदय शोक से भर गया।

विवेक के जाने के बाद जगन उसके पिता योचन से मिला। उसने उसपर अनेकों दोषारोपण लगाये। योचन से यह सहा नहीं गया और वह वहीं का वहीं परलोक सिधारा।

जगन ने सोचा भी नहीं था कि ऐसा होगा। उसने विवेक से क्षमा माँगने का निर्णय किया। किन्तु विवेक उसको देखते ही आग बबूला हो गया और बोला ''अपना चेहरा कभी मत दिखाना''। उसने जगन को घर से भगा दिया।

विवेक पिता की मृत्यु के आघात से बहुत ही दुखी हो गया। एक वर्ष तक वह अपने पिताश्री के शोक में गलता रहा। फिर अपनी माता की जिद के कारण वह शादी करने राजी हुआ। लड़की उसे अच्छी लगी। लड़की के पिता ने उससे कहा ''बेटे, तुम्हारे उत्तम वंश के बारे में तुम्हारे चाचा के लड़के जगन ने हमें सब कुछ

बताया था। मैं अपनी बेटी की शादी उससे करना चाहता था, लेकिन उसने अपने को इसके लिए अयोग्य घोषित किया और कहा भी कि तुम जैसे उत्तम को दामाद बनाऊं।''

विवेक की माँ इस बात पर प्रसन्न हुई कि जगन में अब परिवर्तन आया है और उसने अपने कुटिल स्वभाव को त्यजा है। लेकिन विवेक ने कटुता-भरे स्वर में कहा ''वह हमारा दुशमन है। उसने इस रिश्ते के बारे में इतना जब कहा है, तब अवश्य ही उसके पीछे कोई रहस्य होगा, कोई षड़यंत्र होगा। माँ, मैं इस शादी के लिए सहमत नहीं हूँ''।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने एक लड़की को चुना, जिसका जगन से कोई परिचय नहीं। उस परिवार से किसी प्रकार का उसका संबंध ही नहीं। जगन शादी पर बुलाया भी नहीं गया। कुछ दिनों के बाद जगन की शादी भी पक्की हुई। स्वयं जगन आया और विवेक को आह्वानित किया। फिर भी विवेक उसकी शादी पर नहीं गया।

शादी हो जाने के एक साल बाद विवेक के खेत के बग़ल ही में दस एकड़ की ज़मीन बिकनेवाली थी। एक तो खेत बग़ल में ही था और दाम भी कम था, इसलिए विवेक ने ही उसे खरीदना चाहा। परंतु एक हज़ार अशर्फियाँ कम पड़ीं। वह कर्ज़ लेने का सोच ही रहा था कि शहर से रंगनाथ नामक एक व्यापारी आया। विवेक के पास जो अनाज था, उसे दुगुना दाम देने वह तैयार था। उसने उससे कहा कि आपके पास जो अनाज है, वह खास किस्म का है, और अब अचानक उसका दाम बढ़ गया है। बाजार में उसकी अधिक माँग है।

विवेक इस बात पर खुश हुआ कि अब उसे कर्ज़ लेने की ज़रूरत नहीं। अनाज बेचने पर उसे दुगुना दाम मिलेगा और इससे उसे खेत खरीदने में कोई दिक्कत नहीं होगी। उसने रंगनाथ से कहा ''आश्चर्य है कि मेरे ख़ास अनाज की बात आप तक पहुँची है।''

''आपके चाचा के लड़के जगन के कहने से यह बात मुझे मालूम हुई है।'' रंगनाथ ने कहा।

बस, जगन का नाम सुनते ही विवेक का दिमाग़ फिर गया। उसकी पत्नी समझाती रही, फिर भी विवेक ने व्यापारी को खाली हाथ भेज

दिया। उसकी पत्नी ने उसे समझाते हुए कहा "जगनजी अपने किये पर पछता रहे हैं। अपनी ग़लती को सुधारने का वे भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। क्रोध में आप अपना विवेक और संतुलन खो रहे हैं। इससे आप ही का नुक़सान हो रहा है"।

"जगन मेरा दुश्मन है। एक ही बार मैंने उसका विश्वास किया। फलस्वरूप मेरे पिताश्री का देहांत हुआ। उसपर विश्वास रखने से हमें अपार नष्ट होगा। अविश्वास से जो नष्ट होगा, वह थोड़ा ही होगा, इसलिए अच्छा तो यही है कि उसका विश्वास ना करूँ।" विवेक ने स्पष्ट किया।

ऐसे तो प्रतापपुर में विवेक का अच्छा नाम था, पर जगन के कारण वह बदनाम भी हुआ। सब खुलेआम कहने लगे कि वह दुश्मनी की वजह से जगन की अच्छी और उपयोगी सहायता को स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

कुछ चतुर लोग जगन के नाम का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करते और अपना उल्लू सीधा करने लगे।

एक बार सावंत और माधव उसके पास आये। वे उसके नारियल खरीदने आपस में होड़ लगाने लगे। उनमें से माधव पहले विवेक से मिला और बोला "जगन ने सावंत को कोई उपाय बताया है। तब से वह कह रहा है कि यहाँ के सब नारियल मैं ही खरीदूँगा। मुझे खरीदने नहीं देगा"।

विवेक ने उसी दिन अपने सब नारियल सावंत को ना बेचकर माधव को बेच दिया। उसकी पत्नी समझ गयी कि दाल में कुछ काला

है। उसने पति से कहा "जगन का नाम ले लेकर सब लोग आपको धोखा दे रहे हैं। आपकी कमज़ोरी का फ़ायदा उठा रहे हैं। जगन का विश्वास करने से अपका नुक़सान भी घटेगा और अच्छा नाम भी कमा पायेंगे।"

विवेक अपनी पत्नी पर नाराज़ होता हुआ बोला "मुझे मालूम है कि कौन धोखा देता है और कौन नहीं। यह जानने के बाद ही मैं निर्णय लेता हूँ कि मुझे नुक़सान पहुँच रहा है या नहीं। दिन - ब - दिन हमारी आमदनी बढ़ रही है; घट तो नहीं रही है। यही मेरी सूझ-बूझ का प्रमाण है। क्यों अनावश्यक ही तुम घबराती हो? अब रही जगन की बात। उसका तो, इस जन्म में विश्वास ही नहीं करूँगा, जिसकी वजह से

मेरे पिताश्री की मृत्यु हुई है। जान - बूझकर जिसने मेरे पिताश्री को मृत्यु की शय्या में सुला दिया, उससे दोस्ती करना मेरे लिए संभव नहीं। इससे मेरी बदनामी हो तो हो जाए।''

उसके बाद उसकी पत्नी ने भूलकर भी जगन का नाम कभी नहीं लिया।

कुछ दिनों के बाद एक विचित्र घटना घटी।

किसी काम पर जगन प्रतापपुर आया था। अंधेरा छा जाने के बाद जब वह गली से गुज़र रहा था तब विषैले सर्प ने उसे डस लिया। लोग उसके पास इकट्ठे हो गये। कुछ मांत्रिक के लिए दौड़े तो कुछ वैद्य के लिए। कुछ तो वहीं के वहीं खड़े रह गये, क्योंकि घबराहट में उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा था।

उस समय विवेक उधर से गुज़र रहा था। बात जब मालूम हुई तो उसने फ़ौरन चिल्लाया ''खड़े-खड़े क्या देख रहे हो। वैद्य के पहुँचने के पहले ही विष निकालना है''। वह तुरंत जगन के पास बैठ गया। साँप ने जिस पाँव को डसा था, उसे अपने दोनों हाथों से ऊपर उठाया। अपने मुँह से विष को बाहर खींचकर थूकने लगा। यों उसने चार बार किया। इतने में मांत्रिक और वैद्य भी आये। दोनों बेहोश भाइयों को वैद्य अपने घर ले गया और उनकी चिकित्सा की।

इस विचित्र घटना का ज़िक्र गांव में हर कोई करने लगा। कुछ लोगों ने कहा ''विवेक को अपनी ग़लती महसूस हुई। वह ऐसे ही मौक़े की ताक़ में था कि अपनी ग़लती को कैसे सुधारूँ?'' ''जब रक्षा का उपाय मालूम है तब रक्षा ना करना हत्या करने के बराबर है। जगन के मर जाने पर कहीं वह पाप अपने सिर पर ना आये, इसी भय से विवेक ने उसे ज़िन्दा किया''यह कुछ और लोगों का विचार था।

कुछ समय बाद विवेक और जगन दोनों होश में आये। वैद्य ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे दोनों अब सुरक्षित हैं।

जगन को जब पूरी बात मालूम हुई तब उसने विवेक से कहा ''तुम साधारण मनुष्य नहीं हो, महात्मा हो। कट्टर दुशमन को बचाने के लिए तुमने अपनी जान की बाजी लगायी है। यह काम साधारण मनुष्य नहीं कर सकते।''

कहते हुए अपने दोनों हाथों को जोड़कर उसे प्रणाम किया।

"तुम मेरे कट्टर दुश्मन हो। तुम्हारी प्रशंसा तथा प्रणाम पर भी मुझे विश्वास नहीं।" कहता हुआ विवेक वहाँ से चला गया।

बेताल ने विक्रमार्क को यह कहानी सुनायी और कहा "राजन, जगन विवेक के पिता के मरण का कारक था। इससे विवेक के दिल को उसने ठेस पहुँचायी। उसकी मानसिक स्थिति को डाँवाडोल कर दिया। उसे अशांत कर दिया। उसने जगन को उक्त कारण से अपना दुश्मन माना था तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। किन्तु ऐसे कट्टर दुश्मन को विषसर्प ने डसा तो उसने विष चूसकर अच्छा नहीं किया। ऐसा करना अविवेक नहीं तो और क्या है ? जो काम वह नहीं कर सका, जो प्रतिशोध वह नहीं ले सका, सर्प ने उसे डसकर कर दिया। उसे तो प्रसन्न होना चाहिये था। उसे समझना था कि भगवान ने साँप के रूप में उसे दंड दिया। इन संदेहों के समाधान जानते हुए भी तुम चुप रह जाओगे तो तुम्हारा सिर फट जाएगा"।

विक्रमार्क ने उसके संदेहों को दूर करते हुए कहा "विवेक स्वभावत: दयालू है। उसमें मानव - कल्याण की भावनाएँ हैं। साथ ही उसमें लोकज्ञान है, व्यवहार-कुशलता भी है। इसी कारण उसने अपने दुश्मन का एतबार नहीं किया। दुश्मन और दुश्मनी को ग़ौर से देखा जाए, वे दोनों अलग-अलग मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं। एक बार जगन से उसे नुक़सान पहुँचा। तब से अपने स्वलाभ की भी उसने परवाह नहीं की। उसे अपना दुश्मन ही समझता रहा। वह उससे दूर ही रहा। साधारणतया देखा गया है कि शत्रु को हानि पहुँचाने के लिए ऐसे लोग मौक़े की ताक़ रहते हैं। चूँकि मूलत: शत्रुत्व में उसका विश्वास नहीं, इसीलिए विवेक में जगन के प्रति द्वेष नहीं था। इसीलिए जब उसकी जान खतरे में थी तब अपनी जान पर खेलकर उसे बचाने वह उद्यत हो गया।"

राजा का मौन-भंग करने में बेताल सफल हुआ। वह तक्षण ही शव को लेकर पेड़ पर जा बैठा।

आधार - किरण साथे की रचना।

लालटेन

ज़मींदार केतनवर्मा को ज़रूरी काम पर हेलापुरी से विशालनगर जाना था। आधी रात का समय था, फिर भी वह अपने ओहदे को भूल नहीं पाया। रथ में बैठकर निकल पड़ा। वह जंगल के मार्ग से गुज़रने लगा। रात का समय था, इसलिए अंधकार ही अंधकार था। सारथी बड़ी ही सावधानी से धीरे-धीरे रथ को चला रहा था।

बीच रास्ते में पथ्थरों के एक टीले से रथ टकरा गया। रथ उस टीले से टकराते - टकराते रुक गया। आखिरी क्षण में सारथी ने टीले के ऊपर की लालटेन की कांति में टीला देख लिया था। इस कारण उसने रथ को अचानक रोक लिया। ऐसा ना करता तो रथ अवश्य ही टीले से टकरा जाता और उलट जाता।

ज़मींदार रथ से उतरा। बगल के एक पेड़ के नीचे सिकुड़कर सोया हुआ एक बूढा उस ध्वनि से जाग उठा और उठकर ज़मींदार के पास आया। उसने ज़मींदार को प्रणाम किया। ज़मींदार ने पूछा "क्या तुम्हीं ने इस टीले पर लाल्टेन रखी थी?"

"हाँ महाशय, मैने ही रखी थी, क्योंकि रात का समय है, तिसपर घंना अंधकार है" बूढ़े ने जवाब दिया।

"तुम्हारी वजह से हम ख़तरे से बच गये। ये लो" कहते हुए उसने कुछ अशर्फियाँ बुढ्ढे के हाथ में रखीं।

उन अशर्फियों को पाकर बुढ्ढा बहूत ही खुश हुआ। जब वह जाने लगा तो ज़मींदार के मन में एक संदेह जगा। उसने उस बूढ़े से पूछा "बीच रास्ते में पथ्थरों का यह टीला कैसे आ गया?"

"महोदय, मैने ही यह काम किया था, क्योंकि लालटेन को नीचे रख देने से ठीक तरह से दिखायी नहीं पड़ेगा ना ? इसीलिए पथ्थरों का टीला बना दिया और उसपर लालटेन रख दी, जिससे आते-जाते लोगों को ठीक तरह से दिखाई पड़े।" बुढ्ढे ने बड़े ही इतमीनान से कहा।

- राम नारायण

'चन्दामामा' परिशिष्ट - ७४

हमारे देश के वृक्ष

सुपारी का पेड़

यह तो सबकी जानी हुई बात है कि पान बनाते समय उसमें चूना और सुपारी भी डाले जाते हैं। साधारणतया बिना सुपारी के पान नहीं बनते।

सुपारी के पेड़ बहुत लंबे होते हैं। व्यापारिक दृष्टि से भी इनका मूल्य है। इसमें उपलब्ध 'टानिन' नामक रासायनिक पदार्थ से काली और लाल स्याही भी बनायी जाती हैं। इनके बीजों को तलकर चूर्ण किया जाता है और उस चूर्ण को दाँत माँजने के काम में लाया जाता है।

पतले तनों युक्त यह वृक्ष १८-२० फुटों तक बढ़ता है। देखने में बहुत ही सुंदर लगता है। इसकी टहनियाँ नहीं होतीं। सुपारियों के गुच्छों को काटनेवाले जब एक पेड़ पर चढ़कर उन्हें काटते हैं, तब वे नीचे नहीं उतरते। उसी पेड़ को वे थोड़ा झुकाकर दूसरे पेड़ पर चढ़ते हैं। उस समय वे 'टाजनि' से लगते हैं और यह दृश्य देखने लायक़ होता है। इस प्रकार सुपारी के फलों को काटने के बाद ही वे नीचे उतरते हैं। चूँकि सुपारी के पेड़ आसानी से झुकाये जा सकते हैं, इसीलिए यह उनके लिए साध्य होता है। नारियल के पेड़ तो झुकाये नहीं जा सकते।

साधारणतया पाँच सालों के बाद ही इनके फल फलते हैं। एक ही साल में लगभग तीन सौ फल इसमें फलते हैं। बौदी अवस्था में इनका रंग हरा होता है। पक्की अवस्था में इनका रंग नारंगी होता है। फलने के बाद लाल रंग में यह परिवर्तित होता है। अड़े के परिमाण में इसके फल में रेशा होता है। इस फल के अंदर बड़ा बीज भी होता है। सुपारी के पेड़ों को अधिक वर्षा चाहिये। केरल, पश्चिम बंगाल तथा आसाम में ये पेड़ अधिक पाये जाते है, क्योंकि यहाँ अधिकाधिक वर्षा होती है।

पत्तों के नीचे फूल गुच्छों में होते हैं। फूलों की रक्षा होती है, दोनों से। पत्तों की डंडियों के अंतिम भाग फूटे हुए होते हैं। ये पत्ते झोंपड़ियों को ढकने के काम में लाये जाते हैं। पेड़ के तने से खंभे बनाये जाते हैं।

वृक्षशास्त्र में इसका नाम है 'एरिका केहेचुलिन'। इस प्रकार के सुपारी के पेड़ को हिन्दी, मराठी, गुजराती में सुपारी कहते हैं। बंगाली में गुवा, तमिल में कमुगु, मलयालम में कवंगु तथा तेलुगु में पोक कहते हैं।
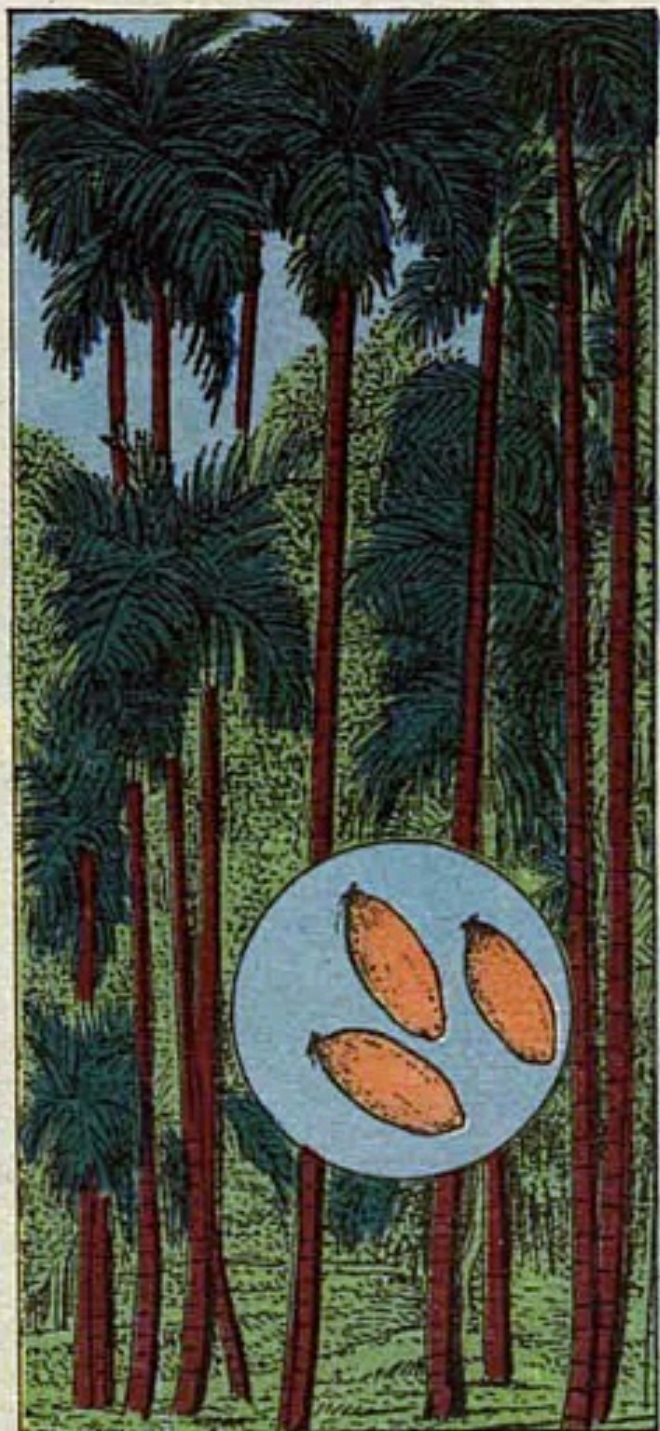
वेदव्यास

सृष्टि के अति प्राचीन चार वेद - ग्रंथ हैं ऋग्वेद, युजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद। आधारों के अभाव के कारण इनकी रचना कब और किन्होंने की, यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। किन्तु पंडितों का अभिप्राय है कि ये छह हज़ार वर्ष पूर्व रचे गये होंगे। कहा जाता है कि ऋषिगण जब ध्यानमग्न होते थे, तब भगवान के द्वारा उनके मनों में वेदमंत्रों का स्फुटन हुआ था। इसका अर्थ यह हुआ कि वेदमंत्र मानव के मस्तिष्क की उपज नहीं, बल्कि भगवान की प्रेरणा से ही उनका आविर्भाव हुआ है।

ये सारे के सारे वेदमंत्र मिश्रित थे, अतः ये चार भागों में विभाजित किये गये। इनको चार पृथक-पृथक नाम देने का श्रेय भी वेदव्यास को ही है। किन्तु इसके उपरांत भी वेदमंत्र लिपिबद्ध नहीं किये गये। गुरु वेदमंत्रों का पठन करते थे और शिष्य उन्हें ध्यान से सुनते जाते थे। वे अपने शिष्यों को भी ऐसे ही सुनाते रहते थे। बहुत समय के बाद ये लिपिबद्ध हुए।

भारत की रचना के द्वारा भारतीय संस्कृति को सुसंपन्न किया वेदव्यास ने। हमारे देश में रामायण की ही तरह सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ है महाभारत। संसार की किसी भी भाषा में इतना बृहत ग्रंथ नहीं है। इलियड तथा औडिस्सी होमर के ग्रंथ हैं। इन दोनों को मिलाने पर भी महाभारत इनसे आठ गुना बृहत् ग्रंथ है।

सजीव पात्रों के चित्रण में, अद्भुत घटनाओं का वर्णन मनोहर शैली में करने में, मानव-जीवन

के उतार - चढ़ाव, उन्नति व पतन को दर्शाने में, सद्‌गुण और दुर्गुणों के विपुलीकरण में तथा शास्त्रीय संप्रदायों के सुरुचिपूर्ण विशदीकरण में महोन्नत ग्रंथ है महाभारत। व्यास ने केवल इस ग्रंथ को रचा ही नहीं, बल्कि इसके एक विशिष्ट पात्र भी बने रहे।

व्यास ने महाभारत रचने का संकल्प किया। वे उसके लेखक की खोज में थे। तब ब्रह्मदेव प्रत्यक्ष हुए और उन्होंने व्यास को इस कार्य के लिए विघ्नेश्वर का नाम सुझाया। लेखक बनकर आये विघ्नेश्वर ने नियम रखा कि व्यास को कहीं रुके बिना लगातार श्लोक बताते जाना होगा। व्यास ने इसके लिए अपनी स्वीकृति दी, किन्तु उन्होंने भी नियम रखा कि विघ्नेश्वर कोई भी ऐसा श्लोक नहीं लिखेंगे, जिसका अर्थ वे स्पष्ट रूप से नहीं समझते। विघ्नेश्वर ने भी इस नियम को स्वीकार किया। वे दोनों बदरिआश्रम के समीप की व्यास गुफ़ा में गये। लगातार रचने का यह कार्यक्रम चलता रहा और ढ़ाई साल में उन्होंने भारत की रचना समाप्त की।

व्यास का अर्थ है संकलनकर्ता, विवरण प्रस्तुत करनेवाला। पवित्र वेदमंत्रों का समीकरण करके उनका विभाजन करनेवाले उत्कृष्ट मेधावी हैं व्यास। व्यास का कृष्णद्वैयापन नामक दूसरा नाम भी है।

कहा जाता है कि व्यास ने केवल भारत ही नहीं रचा बल्कि अष्टादश पुराणों की भी रचना की। यह भी कहा जाता है कि उनके कुछ शिष्यों ने कुछ पुराणों की रचना की और उन्होंने गुरुदक्षिणा के रूप में अपने ही गुरु का नाम दिया होगा।

व्यास के काल के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु चंद पंडितों का अभिप्राय है कि वे पाँच हज़ार पाँच सौ वर्षों के पूर्व के हैं।

क्या तुम जानते हो?

१. एलिफ़ेंटा गुफाएँ कहाँ हैं ?
२. पंद्रहवीं शताब्दी के एक भारतीय महात्मा को हिन्दु और मुसलमान दोनों अपना मानते हैं। वे कौन हैं ?
३. हमारे देश की प्रथम महिला डाक्टर कौन हैं ?
४. हमारे देश में वैमानिक सेना कब स्थापित हुई ?
५. हमारे देश में डाक-स्टाम्प कब से प्रारंभ हुआ ?
६. हमारे देश में जहाज़ों का निर्माण करनेवाली प्रथम संस्था कौन थी। उसकी स्थापना कब और किसने की ?
७. 'कामनवेल्थ डे' कब मनाया जाता है ?
८. ईसा जब शूली पर चढ़ाये गये तब उन्होंने अपने एक शिष्य को अपनी माँ की देखभाल करने की जिम्मेदारी सौंपी। उस शिष्य का क्या नाम है ?
९. ''प्राचीन निबंधनों'' में नोवा ने किसे दादा कहा ?
१०. क्रिकेट किस देश का राष्ट्रीय खेल है ?
११. हवाई-जहाज़ के आविष्कारक रैट भाइयों का पेशा क्या था ?
१२. ''उड़ती तश्तरी'' कब देखी गयी ?
१३. 'दी लेडी वित लाम्प' के नाम से कौन प्रसिद्ध हैं ?
१४. संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रथम प्रधान सचिव कौन था ?
१५. उस रचयिता का क्या नाम है, जिसने 'अटलांटिस' का वर्णन अपनी रचना में किया ?

उत्तर

१. महाराष्ट्र
२. कबीर
३. डा. आनंदीबाय जोशी (१८८६)
४. १९३२, अक्तूबर, ८
५. १८५२ में
६. विशाखपट्टणम में स्थित हिन्दुस्तान शिप-यार्ड। उसकी स्थापना १९४१ में बंबई की सिंधिया स्टीम नाविगेशन कंपनी से हुआ।
७. मई २४
८. जान
९. मेथूस ला
१०. आस्ट्रेलिया
११. साइकिलों की दुकान चलाते थे
१२. १९४७ जून २४
१३. फ्लारेंस नैटिंगल
१४. ट्रिग्वि ली
१५. प्लूटो

पिछड़ा शिष्य

परब्रह्मस्वामी सकल शास्त्रों में पारंगत था। सब दृष्टिकोणों से वह महोन्नत व्यक्ति था। जंगल में रहकर वह तपस्या करता रहता था, फिर भी हर वर्ष कुछ शिष्यों को शिक्षा देता रहता था। उनमें ज्ञान के बीज बोता था। किन्तु किसी भी शिष्य को एक वर्ष से अधिक अपने पास रखता नहीं था।

शिष्य गणनाथ एक वर्ष तक स्वामी के पास रहा। भक्ति और श्रद्धा से उसने शिक्षा पायी, बहुत-सा ज्ञान पाया। उसे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि संसार में इतने ऐसे विषय हैं, जिनका ज्ञान उसे नहीं है। स्वामी ने उसे समझाया ''पुत्र, मुझे जितना मालूम है, उसमें से बहुत ही थोड़ा तुम्हें बताया है। अब रही मेरे ज्ञान की बात। वह तो ज्ञान-समुद्र की एक बूंद के समान है। अवश्य ही मैं समस्त शास्त्रों में पारंगत हूँ, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि संपूर्ण ज्ञानी हूँ। ज्ञान का कोई अंत नहीं होता। कोई अगर दावा करें कि मेरे पास और सीखने के लिए कुछ नहीं है, तो उससे बढ़कर कोई अज्ञानी नहीं होगा। ज्ञान का कुआँ जितना खोदोगे, उतना और पाओगे। पाते ही रहोगे।''

उस साल गणनाथ को मिलाकर दस शिष्य परब्रह्मस्वामी के पास शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। स्वामी पहले सबको एक साथ पढ़ाता था। उसके बाद उसने उन्हें दो टोलियों में बाँटा। वर्ष के मध्य उन्हें पुनः मिला दिया। लेकिन कुश को उसने अन्यों से अलग रखा।

शेष शिष्य समझ गये कि स्वामी कुश के प्रति प्रत्येक श्रद्धा दिखा रहे है। नौ शिष्यों को दिन में चार घंटों की शिक्षा देता तो कुश मात्र को आठ घंटों तक पढ़ाता था। गुरु का यह रुख उन्हें अच्छा नहीं लगा। एक दिन सब मिलकर उसके पास गये और पूछा कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। हमसे क्या ग़लती हुई है ?

''शिष्य के सामर्थ्य के अनुसार मैं निर्णय

लेता हूँ कि उसे कितनी देर पढ़ाना है। आप लोग भी कुश की तरह शिक्षा कुशाग्र बुद्धि से ग्रहण करोगे तो सब लोगों को एक साथ पढ़ाऊँगा।'' गुरु के इस उत्तर से वे निरुत्तर हो गये। आश्रम से उनके चले जाने का समय दिन आ गया।

उस दिन परब्रह्मस्वामी ने उनके सम्मुख दस बीज रखे। वे दसों बीज एक ही जैसे दीख रहे थे। उसने गणनाथ से कहा ''उन बीजों को अपने हाथ में लो और उन्हें अच्छी तरह उन्हें मिलावो''। उसी के हाथों एक-एक बीज बाकी शिष्यों में बँटवाया और उनसे पूछा ''गणनाथ ने इन बीजों को बाँटा है। आप लोगों को मुझपर पूरा विश्वास है ना कि मैने किसी का पक्ष नहीं लिया ?''

सब शिष्यों ने अपने सिर हिलाये और बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे कि गुरु आगे क्या कहनेवाले हैं। तब स्वामी ने उनसे कहा ''घर पहुँचने के बाद अपने घर के पिछवाड़े में यह बीज बोना। महीने भर में अंकुर निकल आयेगा। तीन महीनों में यह पौधा बनेगा। छह महीनों में फूल निकल आयेगा। इन दस बीजों में एक ही ऐसा बीज है, जिसमें नीले रंग का फूल निकल आयेगा। जिसके यहाँ नीला फूल निकलेगा, वह गुरु दक्षिणा के रूप में मुझे लाकर फूल दे। जो गुरु दक्षिणा देगा, उसकी शिक्षा चिरस्थायी होगी। मेरी पढ़ाई हुई सारी विद्याएँ शास्वत रूप से वह स्मरण रखेगा। ऐसा सदवकाश आपमें से किसी एक को ही मिलेगा। बाकी सबको निरंतर अभ्यास करते रहना होगा और प्राप्त ज्ञान को स्मरण करते रहना पड़ेगा।''

गणनाथ ने असंतृप्त होते हुए कहा ''गुरुवर, इससे भी श्रेष्ठ गुरुदक्षिणा देने की योग्यता हममें है। यह फूल मात्र देकर हम क्यों संतुष्ट हों?''

''पागल कहीं के। उस पुष्प को चबाकर खाने से एक महीने के पहले ही मालून हो जाता है कि बारिश कब होगी। ऐसी अद्‌भुत शक्ति उस पुष्प में है। मुझमें इस शक्ति का अभाव है। यह पुष्प तो किसी भी के लिए साधारण पुष्प है। किन्तु मेरे लिए अमोघ पुष्प है। मेरे गुरु का आदेश था कि मेरे शिष्य द्वारा ही लाया गया वह पुष्प मेरे काम आयेगा। शिष्य के ना ले आने पर मेरे लिए भी वह सामान्य पुष्प ही बनकर रह

जायेगा। इसीलिए मैं तुम लोगों की सहायता ले रहा हूँ।'' स्वामी ने उन्हें यों पूरा विवरण दिया।

सब शिष्य अपने-अपने गाँव निकल पड़े।

गुरुनाथ ने शिवपुर पहुँचने के बाद अपने घर के पिछवाड़े में बीज बोया। गाँव के लोग उसे देखने आये क्योंकि वह परब्रह्मस्वामी जैसे गुरु का शिष्यत्व करके लौटा था। इसलिये उसकी शिक्षा के बारे में उससे उन्होंने विवरण जाना।

पूरा सुनने के बाद उनमें से एक ग्रामीण ने पूछा ''इस शिक्षा और ज्ञान के बारे में तो हम कुछ नहीं जानते। हमें तो इतना ही जानना है कि गाँव में कब बारिश होगी? यह ना जानने के कारण फसलें भी ठीक नहीं हो रहीं हैं। अगर तुम पहले ही बता सकोगे कि बारिश कब होगी तो सारा गाँव तुम्हारा ऋणी होगा, तुम्हारा सम्मान करेगा। तुम्हें भगवान की तरह पूजेगा।''

उसकी बातें सुनते ही गणनाथ के मस्तिक में नाना प्रकार के विचार आये। उसे चिंता होने लगी कि नील पुष्प उगते ही उसे लेकर गुरु के पास जाना पड़ेगा। वह सोचने लगा, ''गुरुदक्षिणा ना भी दूँ, तो क्या हुआ। नीले रंग के पुष्प को चबाकर निगल जाऊँगा तो सारी विद्याएँ शाश्वत रूप से स्मरण में रहेंगीं। गुरु के ज्ञान से भी बढ़कर है यह पुष्प।

इस पुष्प की सहायता से पहले ही जान जाऊँगा कि कब वर्षा होगी। इस ज्ञान से मैं प्रसिद्ध हो जाऊँगा, मेरा गौरव होगा और पर्याप्त संपत्ति जुटा पाऊँगा।''

उस दिन से गणनाथ हर दिन मंदिर जाने लगा। भक्ति व श्रद्धापूर्वक भगवान की पूजा करने लगा। उसकी एक ही इच्छा थी, एक ही प्रार्थना थी। वह थी नीले रंग का पुष्प उसके पौधे में उगे।

दिन बीतते गये। बीज में अंकुर निकल आया, वह पौधा हुआ। उसमें कली निकल आयी। कली पुष्प के रूप में विकसित हुई। आश्चर्य तो यह कि उस पुष्प में कहीं भी श्वेत रंग नहीं था। वह तो एकदम नीले रंग का था।

गणनाथ के आनंद की सीमाएँ ना रहीं। उसने तुरंत पुष्प तोड़ा। मुँह में डालनेवाला ही था कि वह एकदम रुक गया। सोच में मड़ गया कि कहीं मुझसे ग़लती तो नहीं हो रही है। उसे
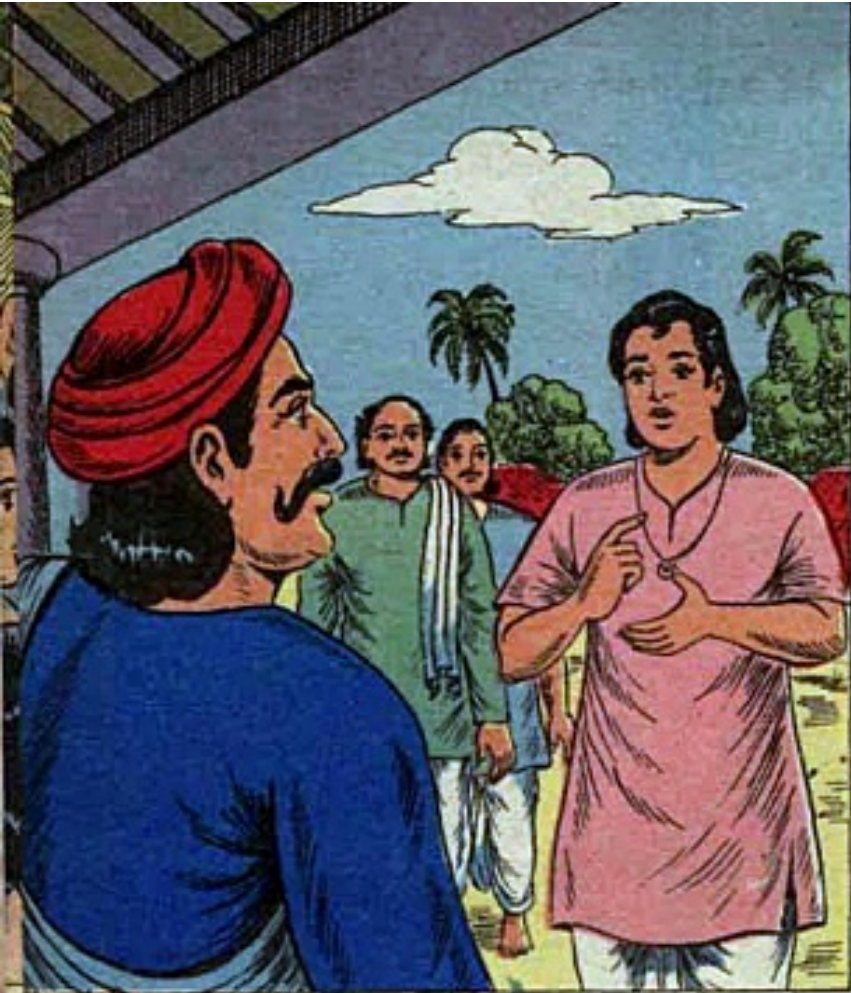
तो वह पुष्प गुरु दक्षिणा के रूप में देना था।

"गुरु ने कुश को प्रत्येक शिक्षा देकर पक्षपात दिखाया है। भगवान की मुझपर कृपा है, इसीलिए नीले रंग का पुष्प उसके बीज से नहीं बल्कि मेरे बीज से निकला है। अत: मैं ही इस नीले रंग के पुष्प का सच्चा हक़दार हूँ। इसे खाकर अद्‌भुत शक्ति पाना कोई ग़लत काम नहीं है।" यों उसने अपने आपको समझाया और उस पुष्प को खा लिया।

बस, खाते ही उसके मष्तिष्क में बारिश के बारे में विवरण उत्पन्न होते गये। उसे मालूम हो गया कि दो दिनों में उस गाँव में भारी वर्षा होनेवाली है। वह दौड़ा-दौड़ा ग्रामाधिकारी के पास गया और कहा "महाशय, मैंने अपने ग्रामीणों के लिए अपने ज्ञान का संपूर्ण उपयोग किया है। इस ज्ञान से मुझे शक्ति प्राप्त हुई है और इस शक्ति से जान पाया हूँ कि बारिश कब होगी? दो दिनों में हमारे गाँव में भारी वर्षा होगी"।

गर्मी के दिन थे। ऐसे समय पर तो गाँव में कभी भी बारिश ही नहीं होती थी। इसलिए ग्रामाधिकारी ने गणनाथ की बातों का विश्वास नहीं किया। फिर भी, उसने सब ग्रामीणों को यह बात बतायी। चंद लोगों ने विश्वास किया तो चंद लोगों ने खिल्ली उड़ायी।

किन्तु गणनाथ के कहे अनुसार ठीक दो दिनों के बाद शिवपुर में बारिश हुई। लोगों में उसके प्रति विश्वास जगा। उस दिन से उसकी दशा में आमूल परिवर्तन हो गया। दो-तीन वर्षों में वह गाँव में सबसे अधिक धनवान बन गया। पड़ोस के गाँवों से भी लोग यह जानने आते थे कि उनके गाँवों में कब वर्षा होगी?

ऐसे समय में एस साल उस पूरे प्रांत में अकाल पड़ा। लगातार दो सालों तक बारिश ही नहीं हुई। गणनाथ ने सबसे बताया भी कि एक और महीने तक वर्षाएँ नहीं होंगीं।

तब पड़ोस के एक गाँव से एक व्यक्ति आया और ग्रामाधिकारी से मिला। उस समय और ग्रामीणों के साथ गणनाथ भी वहाँ उपस्थित था।

पड़ोस के गाँव से आगत व्यक्ति को देखकर गणनाथ ने समझा कि वह उसीसे मिलने आया है। उसने बिना सोचे-विचारे उससे कहा "मेरे पास आने से क्या फ़ायदा? अकाल प्राँत भर में

है। जो बारिश यहाँ नहीं हुई, वह क्या तुम्हारे गाँव में होगी?''

विनयपूर्वक उस ग्रामीण ने कहा ''महोदय, पहले तो आप कह पाते थे कि बारिश कब होगी। लेकिन अब की बार आपका अंदाजा ग़लत निकला। हमारे गाँव में एक महाशय आये हुए हैं। उन्होंने कहा था कि दो दिनों में बारिश होगी। और बारिश हुई भी। उन्हें आप अपने गाँव में भी बुलाइये''। यह सुनते ही गणनाथ का चेहरा फीका पड़ गया, विवर्ण हो गया। वह मना करता रहा, लेकिन गाँववालों ने उसकी एक ना सुनी। उन्होंने उसे अपना गाँव बुलवाया।

वहाँ आये हुए कुश को देखकर गणनाथ चकित रह गया। उसने उससे सब कुछ बताया और कहा ''आज तक मेरी भविष्यवाणी कभी विफल नहीं हुई। मुझे तो लगता है कि तुम्हारे आने में अवश्य ही गुरु का हाथ है। मैं जानता था कि गुरु तुम्हें बहुत चाहते हैं, तुम्हारे पक्ष में हैं। उन्होंने ऐसी बहुत-सी विद्याएँ तुम्हें सिखायीं, जिनसे हमें वंचित रखा। यह घटना मेरे संशय को और दृढ़ कर रही है। उन्होंने बीज देने में भी अपनी पक्षपात-बुद्धि दिखायी''।

कुश हँस पड़ा और बोला ''ना ही गुरु का इसमें कोई हाथ है या ना ही उनकी कोई माया, महिमा है। उन्होंने तो हम सब को नीले रंग का पुष्प देनेवाला बीज ही दिया। उन्होंने हमारी गुरुभक्ति की परीक्षा लेनी चाही। उस पुष्प को लेकर मेरे अलावा कोई भी उनके पास नहीं गया। मुझसे वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आकस्मिक वर्षा बरसाने की अदनी शक्ति मुझे दी। अलावा इसके, उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि पुष्प को अच्छी तरह से चबाऊँ और खाऊँ। उन्होंने इसका दुरुपयोग करने से मुझे सावधान भी किया। जहाँ तक हो सके, मैं जनता की सहायता और सेवा कर रहा हूँ''।

यह सुनकर गणनाथ सोच में पड़ गया। वह अब समझ गया कि योग्यता के अनुरूप ही ज्ञान की उपलब्धि होती है। सब को समान अवकाश मिले, किन्तु कुश में एकाग्रता भी, जिसका अन्यों में अभाव था। इसी कारण ज्ञानार्जन में बाकी शिष्य पिछड़े रहे। यह सत्य जानकर गणनाथ पछताने लगा।

योग्यता की परीक्षा

कलिंगदेश के वृद्ध मंत्री की आकस्मिक मृत्यु के क़ारण राजा कीर्तिवर्धन को जटिल समस्या का सामना करना पड़ा। कलिंगदेश सुविशाल राज्य ही नहीं था, बल्कि सुसंपन्न राज्य भी था। उसकी विशिष्टताओं से अड़ोस-पड़ोस के राजा बहुत ही प्रभावित थे, साथ ही आकर्षक भी। किसी तरह उसे अपने राज्य का भाग बनाने के लिए वे बहुत ही आतुर रहते थे। वे उस मौक़े की ताक़ में थे। ऐसे राज्य को सुस्थिर तथा सुचारु रूप से चलाने के लिए एक योग्य तथा दक्ष मंत्री की नितांत आवश्यकता थी। उसका चतुर तथा राजतंत्र से भिज्ञ होना भी बहुत ही ज़रूरी था।

मृत महामंत्री केवल प्रतिभावान ही नहीं बल्कि अनुभव का धनी था। कीर्तिवर्धन को अपने आस्थान में कोई ऐसा नहीं दिखायी पड़ा, जो उनके समान सुयोग्य हो। अतः उसने निर्णय किया कि यह कोई ज़रूरी नहीं है कि मंत्रिपद आस्थान के ही किसी सदस्य को दिया जाय।

सोच-विचार के बाद कीर्तिसिंह ने राज्य-भर में घोषणा करवायी। उस घोषणा में बताया गया "कलिंगदेश का मंत्री बनने के लिए एक योग्य तथा सक्षम व्यक्ति की आवश्यकता है। उसका बुद्धिमान, प्रतिभावान तथा ज्ञानी होना ज़रूरी है। किन्तु सबसे प्रार्थना है कि इन योग्यताओं का अभाव होते हुए भी मंत्रिपद के लिए अपना आवेदन-पत्र ना भेजें। ऐसी ज़रूरत ना आ पड़े कि हमें हर आवेदक की योग्यता की परीक्षा लेनी पड़े।

जिसके मुखमंडल पर तेजस्विता हो, जिसमें प्रतिभा हो, देखते ही जो योग्य और सुँदर लगे, महामंत्री लगे, ऐसे ही व्यक्तियों की योग्यता की परीक्षा ली जायेगी"।

हाँ, महामंत्री बनने के लिए चतुर, बुद्धिमान तथा प्रतिभावान होना आवश्यक तो है ही। किन्तु बहुत से नागरिकों को घोषणा का वह

नरेश यादव

भाग अच्छा नहीं लगा, जिसमें बताया गया था कि उसके मुखमंडल पर तेजस्विता होनी चाहिये, कांति होनी चाहिये, होनी चाहिये सुंदरता। पर राजा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का साहस किसी में नहीं था।

कलिंगदेश में प्रतिभावनों का अकाल पड़ नहीं गया था। किन्तु जिस तेचस्विता, कांति आदि का उल्लेख घोषणा में किया गया था, उनके ना होने के कारण बहुत प्रतिभावान मंत्रिपद के लिए आगे नहीं बढ़े। जिन्होंने अपने को इस योग्य समझा, वे राजा से मिले। किन्तु राजा उनसे तृप्त नहीं हुआ। वे निराश लौट गये।

उसी देश की राजधानी का नागरिक श्रीधर अक़्लमंद था, फुर्तीला था और था प्रतिभावान। शास्त्रों का उसने गंभीर अध्ययन किया था। राजनीति - शास्त्र में भी वह पारंगत था। राज्य-शासन की पद्धतियों से भी वह भली - भांति अवगत था। उसे पूरा विश्वास था कि राजा की योग्यता - परीक्षा में अवश्य ही उत्तीर्ण हूँगा। लेकिन रुकावट तो उसकी सूरत थी। वह बदसूरत था। एकदम काला था, अलावा इसके, उसके चेहरे पर चेचक के दाग़ थे।

श्रीधर ने मंत्रिपद के लिए कोशिश करने की ठानी। इसके लिए उसने एक योजना बनायी। सबेरे - सबेरे जब राजा उद्यान-वन में घूम रहा था, तब वह उससे मिलने गया।

उस समय राजा का अंगरक्षक किसी से बातों में लगा हुआ था। उसकी आँख से बचकर श्रीधर ने उधान-वन में प्रवेश किया। उस समय राजा के सिर पर ना ही राज - मुकुट था, ना ही
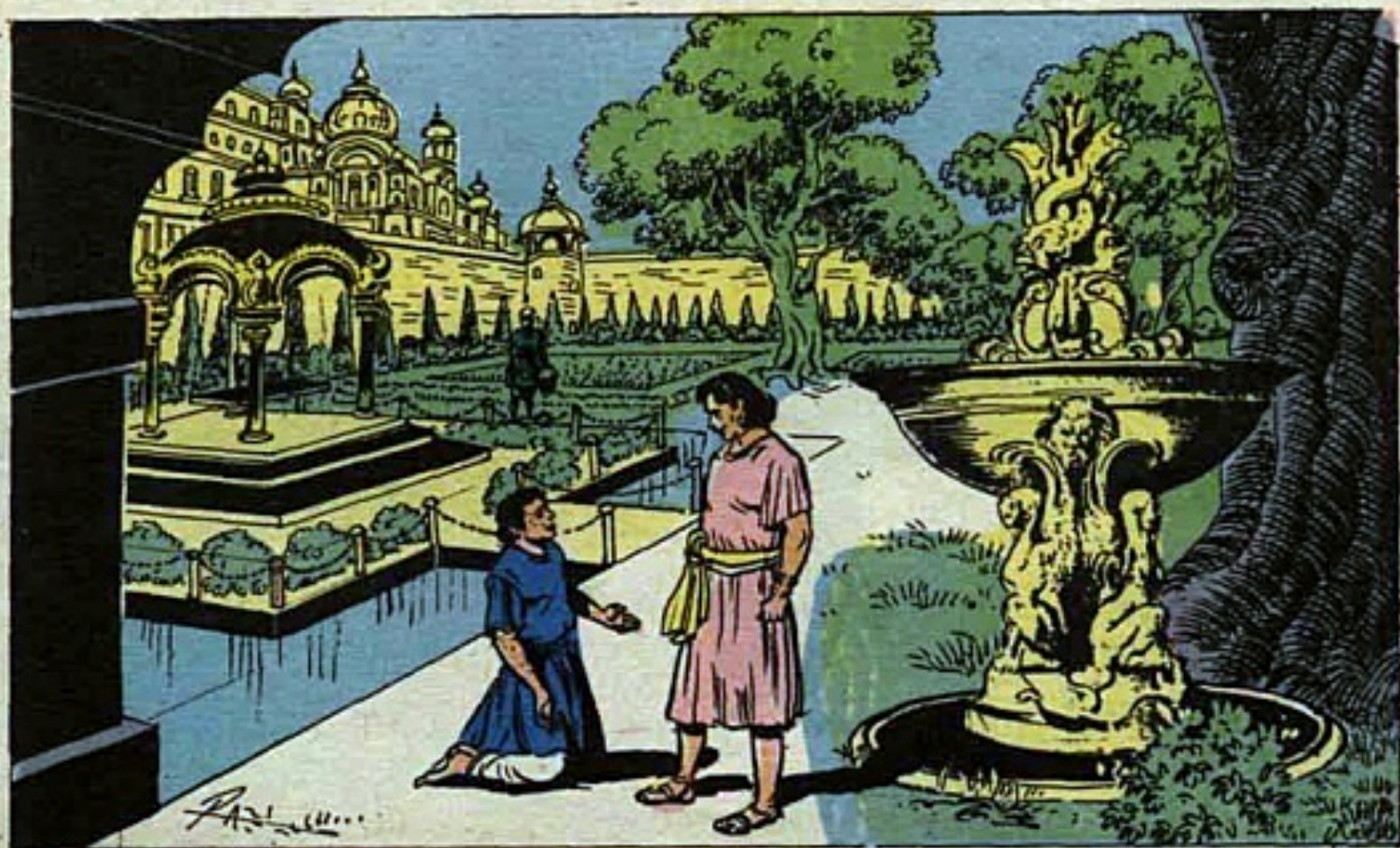
क़ीमती पोशाक।

श्रीधर सीधे राजा के पास नहीं गया। वह पौधों को पानी से सींचते हुए माली के पास गया और बोला "महाराज, माता-पिता की मृत्यु के बाद मैं अनाथ हो गया हूँ। भूख से तड़पा जा रहा हूँ। कृपया कोई नौकरी दिलाइये।" वह गिड़गिड़ाने लगा। राजा नाराज़ होता हुआ श्रीधर के पास आया और पूछा "तुम किस देश के नागरिक हो?"

श्रीधर ने कहा "मैं इस देश का ही नागरिक हूँ"। "इस देश के नागरिक हो और इतना भी नहीं मालूम कि इस देश का राजा कौन है ? मैं हूँ इस देश का राजा। जिससे तुम गिड़गिड़ा रहे हो, वह माली है" राजा ने कहा।

श्रीधर ने राजा को सिर झुकाकर सविनय प्रणाम किया और कहा "क्षमा चाहता हूँ महाराज। मैंने आज तक आपको देखा नहीं था, इसलिए यह ग़लती हो गयी। आपके सिर पर ना ही मुकुट है, तन पर ना ही क़ीमती पोशाक। इसीलिए मै आपको पहचान नहीं पाया। यह माली तो लंबा और मोटा है। शरीर से भी दृढ़ है। इसकी तनी मूछें हैं। आँखों में भी भरपूर कांति है। इसलिए इसे ही मैं राजा समझ बैठा। आपका अनादर करने का मेरा कोई उद्देश्य नही था"।

यह सुनते ही राजा को अपनी घोषणा का विषय याद आया। राजा अब समझ गया कि मंत्रिपद के लिए चाहिये बुद्धि और प्रतिभा। उस पद के लिए यह कोई आवश्यक नहीं कि उसकी रूप-रुखाएँ भी आकर्षक हों। वास्तविकता को भाँपकर राजा ने हँसते हुए श्रीधर से कहा "मंत्रिपद के लिए किये गये घोषणा-पत्र की त्रुटियों की ओर तुमने बहुत ही अच्छी तरह से मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। तुम जैसे बुद्धिशाली को साधारण नौकरी क्यों? मंत्रिपद के लिए ही प्रयत्न करो। अब तो रूप-रेखाओं के नियम को हटा रहा हूँ। इसलिए कल होनेवाली योग्यता-परीक्षा में अपने भाग्य को आजमावो।"

दूसरे दिन योग्यता की परीक्षा में श्रीधर पारित हुआ। मंत्री बना। राजा को अच्छी और उपयोगी सलाहें देकर समर्थ मंत्री के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भीम गंगा में फेंका गया और पाताल पहुँच गया। धर्मराज को इस संबंध में तनिक भी मालूम नहीं था। उसने बहुत ढूँढ़ा, लेकिन भीम का कहीं पता नहीं चला। दुर्योधन से पूछा गया तो उसने कहा कि बहुत पहले ही वह नगर लौट चुका है। धर्मराज तक्षण नगर पहुँचा। माता कुन्ती से भी उसने पूछा तो उसने नकारात्मक उत्तर दिया।

"गंगा के तट पर उसे लेटे हुए मैने देखा था। फिर वह वहाँ देखा नहीं गया। बहुत ढूँढ़ा, लेकिन कहीं भी दिखायी नहीं पड़ा। मेरे सारे प्रयत्न विफल हो गये। पता नहीं, वह कहाँ चला गया" धर्मराज ने चिंतित हुए कुन्ती से कहा।

कुन्ती को यह समाचार जानकर अत्यंत दुख हुआ। उसने धर्मराज से कहा "तुम और तुम्हारे भाई चारों दिशाओं में उसे ढूँढ़ो।" फिर उसने विदुर को बुलवाया और उससे कहा "भीम प्रमाणकोटि स्थल पर अपने शेष भाइयों के साथ गया था। वह अब तक लौटा नहीं है। धर्मराज ने पूरा गंगा-तट ढूँढ़ा, लेकिन वह कहीं नहीं मिला। दुर्योधन उससे बहुत जलता है, उससे ईर्ष्या करता है। मुझे भय हो रहा है कि कहीं उसने उसे मार तो नहीं डाला। भगवान करे, मेरा भय सच न निकले।"

"अच्छा हुआ, तुमने यह बात मुझी से कही। भविष्य में कभी भी किसी से इसका ज़िक्र मत करना। दुर्योधन दुष्ट और नीच है। अगर यह बात उसके कानों में पड़ी तो शेष भाइयों को भी वह मार ड़ालेगा। ऐसी भूल फिर से कभी मत करना। तुम्हें इतना दुखी होने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि भीम पर कोई विपत्ति आ ही नहीं सकती। वह अवश्य ही कहीं सुरक्षित ही होगा।

तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। तुम्हारे सब पुत्रों की आयु दीर्घ है। कोई भी उनका बाल बाँका नहीं कर सकता''। यों विदुरने कुन्ती को सांत्वना दी। उसे धीरज देकर वहाँ से चला गया।

वहाँ नागलोक में भीम आठ दिनों तक मज़े से सोता रहा। जब वह जागा तो उसने देखा कि वह नागजनों के बीच में है। उन्होंने उससे कहा ''पिये दिव्यरस को तुमने अच्छी तरह पचा लिया है। अब से हज़ार हाथियों के समान का बल तुममें होगा। उठो, गंगा में स्नान करो। जाओ और अपनी माँ तथा भाइयों से जाकर मिलो''।

भीम ने गंगा में स्नान किया। नागों ने उसे पहनने के लिए नूतन वस्त्र दिये। उसे बढ़िया खाना खिलाया। अनेकों आभूषणों से उसे सजाया। एक नाग ने भीम को अपने कंधे पर बिठाया और उसे प्रमाणकोटि स्थल के एक वन में अकेले छोड़ दिया। भीम ने प्यार से उस नाग को बिदा किया और हस्तिनापुर पहुँचा। माँ और धर्मराज को प्रणाम किया। बाक़ी भाइयों के गले मिला।

उसके आ जाने से सब लोग निश्चिंत हो गये।

भीम ने माँ से आप बीती सब सुनायी। दुर्योधन ने भोजन में कैसे विष मिलाया, कैसे उसके हाथ-पैर बाँधकर गंगा में डुबो दिया। नागलोक में उसके क्या-क्या अनुभव थे आदि सविस्तार भीम ने माँ को बताया। दुर्योधन की दुष्टता पर कुन्ती को बहुत दुख हुआ और भय भी। पर उसे इस बात पर आनंद हुआ कि उसका पुत्र सक्षेम लौटा है।

दुर्योधन ने क्या सोचा और क्या हुआ? वह समझता था कि भीम के मर जाने से उसका प्रतिद्वंदी समाप्त हो जाएगा। बाक़ी चारों भाई मेरी मुट्ठी में होंगे। वह जो चाहेगा, कर पायेगा। भविष्य में भी शेष पाँडवों से उसे किसी प्रकार का भय नहीं होगा। उसने अपने भाई दुश्शासन से कहा भी ''मैंने भीम को सदा के लिए सुला दिया है। क्षण-क्षण उसकी उपस्थिति हमें भयभीत करती रही। हमारा मनोधैर्य ढीला पड़ता जा रहा था। उसके बल-पराक्रम को देखकर हम अपने आप को धिक्कारने लगे। हमारे और भाई तो उससे डरकर दूर भागने लगे। इस

स्थिति से मेरा भी मन भय से काँप रहा था। अब हम निश्चिंत रह सकते हैं। युधिष्ठर और अर्जुन शांत स्वभाव के हैं। वे वीर अवश्य हैं, लेकिन भीम की तरह वे कोई उपद्रव नहीं मचाएँगे। नकुल और सहदेव को तो मैं गिनती में ही नहीं लेता।''

किन्तु बेचारे दुर्योधन को क्या मालूम था कि उसका किया गया अपकार, उपकार में परिवर्तित हुआ है। भीम का बल, शौर्य, पराक्रम द्विगुणीकृत हो गया है। दिव्यरस पीकर उसने अपूर्व बल पा लिया है। कुटिल विचारों, तथा स्वार्थी प्रणालियों का ऐसा ही परिणाम होता है।

कौरव और पाँडव राजकुमार धनुर्विद्या सीखने कृपाचार्य के पास भेजे गये। भीष्म ने इसका प्रबंध किया। कुछ समय तक राजकुमारों ने कृपाचार्य के पास धनुर्विद्या का प्रशिक्षण पाया। फिर भीष्म ने हस्तिनापुर में आये हुए द्रोणाचार्य को उनका गुरु बनाया।

द्रोण भरद्वाज नामक ऋषि का पुत्र था। उसने समस्त वेदों का पठन किया। शस्त्रविद्या का अभ्यास करने के लिए अग्निवेश नामक गुरु को अपना गुरु बनाया। उससे अग्नेय आदि अस्त्रों को पाया।

अग्निवेश के पास एक दूसरा शिष्य भी था। वह पाँचाल का राजा वृषत का पुत्र द्रुपद था। द्रोणाचार्य और द्रुपद एक ही गुरु के यहाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, इसलिए उन दोनों में गाढ़ी दोस्ती हो गयी।

कुछ समय बाद पाँचाल राजा वृक्षत की
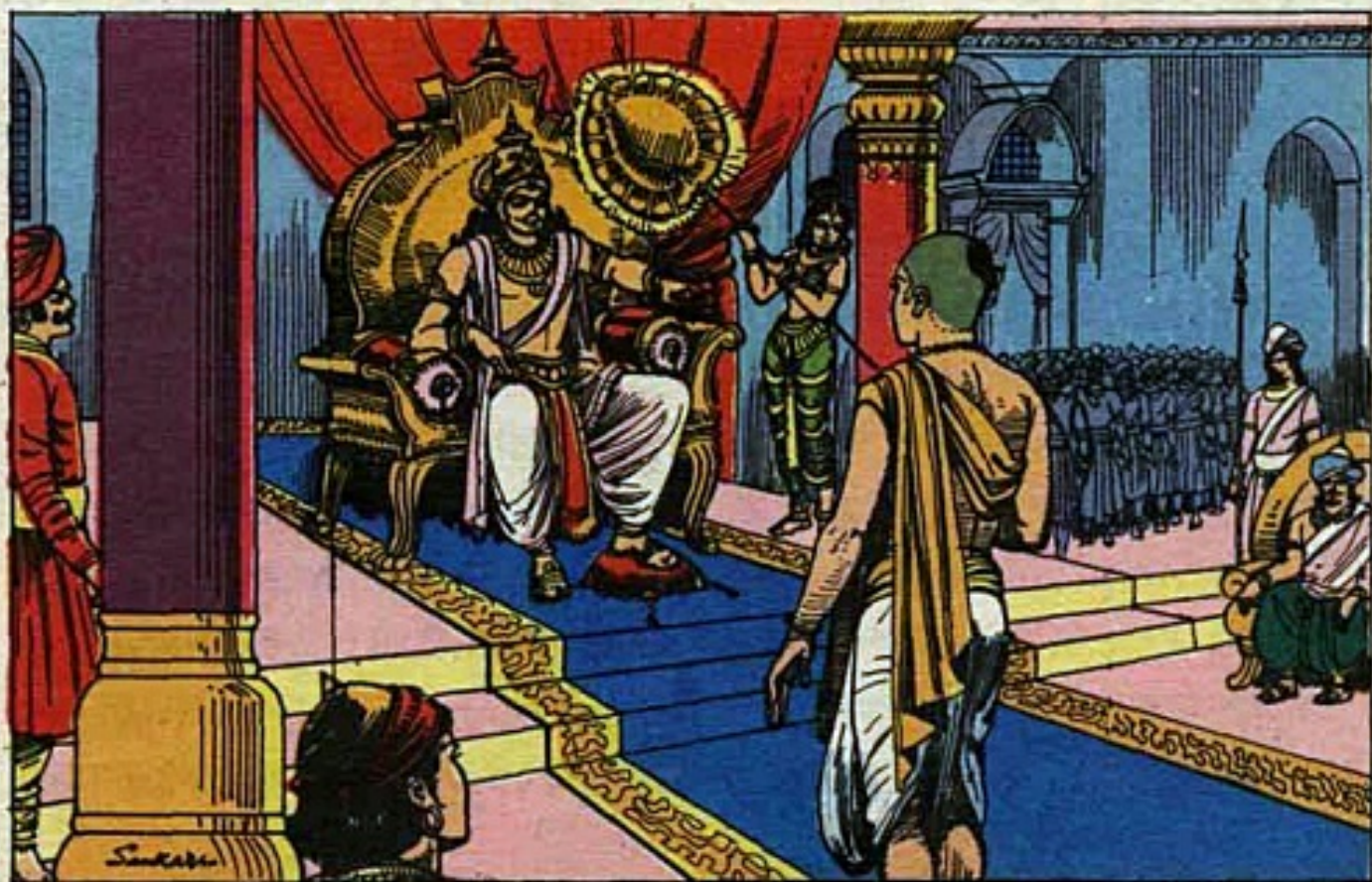
मृत्यु हो गयी। द्रुपद पांचाल देश के सिंहासन पर आसीन हुआ। द्रोण का पिता भरद्वाज भी मर चुका था। उसकी मृत्यु के बाद द्रोण ने कृपाचार्य की बहन कृषि से विवाह किया। उनका एक पुत्र हुआ, जिसका नाम था अश्वथ्थामा।

अपना पारिवारिक जीवन बिताने के लिए द्रोण को धन की आवश्यकता आ पड़ी। उसने सुन रखा था कि परशुराम ब्राह्मणों को बड़ी उदारता से दान दे रहा है। बड़ी आशा लेकर वह वहाँ गया।

परशुराम ने द्रोण से कहा "पुत्र, जितना मेरे पास था, ब्राह्मणों को दान में दे दिया। समस्त भूमि कश्यप को दे दी। मेरे पास शस्त्रों के अलावा और कुछ नहीं।"

द्रोण ने कहा "वे शस्त्र ही मुझे प्रदान कीजिये"।

परशुराम ने अपने पास जितने भी शस्त्र थे, द्रोण को दे दिये। साथ ही उसे उनके प्रयोग की विधि भी सिखायी। साथ ही यह भी सिखाया कि उनका उपसंहार कैसे करना चाहिये।

इसके बाद द्रोण अपने सहपाठी द्रुपद के यहाँ सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से गया। राजा बन जाने के बाद द्रुपद घमंडी बन गया। उसने द्रोण को देखकर उसकी हँसी उड़ाते हुए कहा "मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो? जाओ, चले जाओ यहां से"।

अपमानित द्रोण हस्तिनापुर लौटा। वह अपने साले के पास अज्ञात जीवन बिताता रहा। एक दिन जब कौरव और पाँडव कुमार नगर के बाहर गेंद खेल रहे थे, तब गेंद कुएँ में जा गिरी। उसे बाहर निकालना उनसे हो नहीं पा रहा था। उस समय द्रोण उधर से गुज़र रहा था। कौरव और पाँडवों ने उससे गेंद बाहर निकालने के लिए गिड़गिड़ाया।

"बालको, तुम सब भरतवंशज हो। कृपाचार्य के शिष्य हो। कुएँ से गेंद निकालना भी तुम लोगों के लिए असाध्य हो गया है? देखो, अपनी अंगूठी भी कुएँ में डाल रहा हूँ। उसे और गेंद को भी बाहर निकालूँगा। देखते जाना" कहते हुए द्रोण ने कुएँ में झाँका और मुस्कुराते हुए अपनी अंगूठी भी कुएँ में डाल दी।

धर्मराज ने द्रोण से कहा "ब्राह्मणोत्तम, अगर आपने यह काम किया तो कृपाचार्य

नमस्कार किया और कहा "स्वामी, आज तक हमने ऐसी अद्‌भुत शक्ति कहीं नहीं देखी।

आप कौन हैं और हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?"

"तुम बालक हो। मेरी क्या सेवा कर सकते हो? मेरी बात भूल जाओ और खेलो। किन्तु हाँ, यह बात अपने दादा भीष्म से अवश्य कहना" द्रोण ने कहा।

बालकों द्वारा भीष्म को यह बात मालूम हुई। द्रोण का सादर उसने स्वागत किया और पूछा "क्या मैं जान सकता हूँ, आप हस्तिनापुर क्यों आये हैं?"

द्रोण ने अपनी और अपने पूर्वजों का पूरा वृत्तांत सुनाकर कहा "मेरे पिताश्री का आदेश
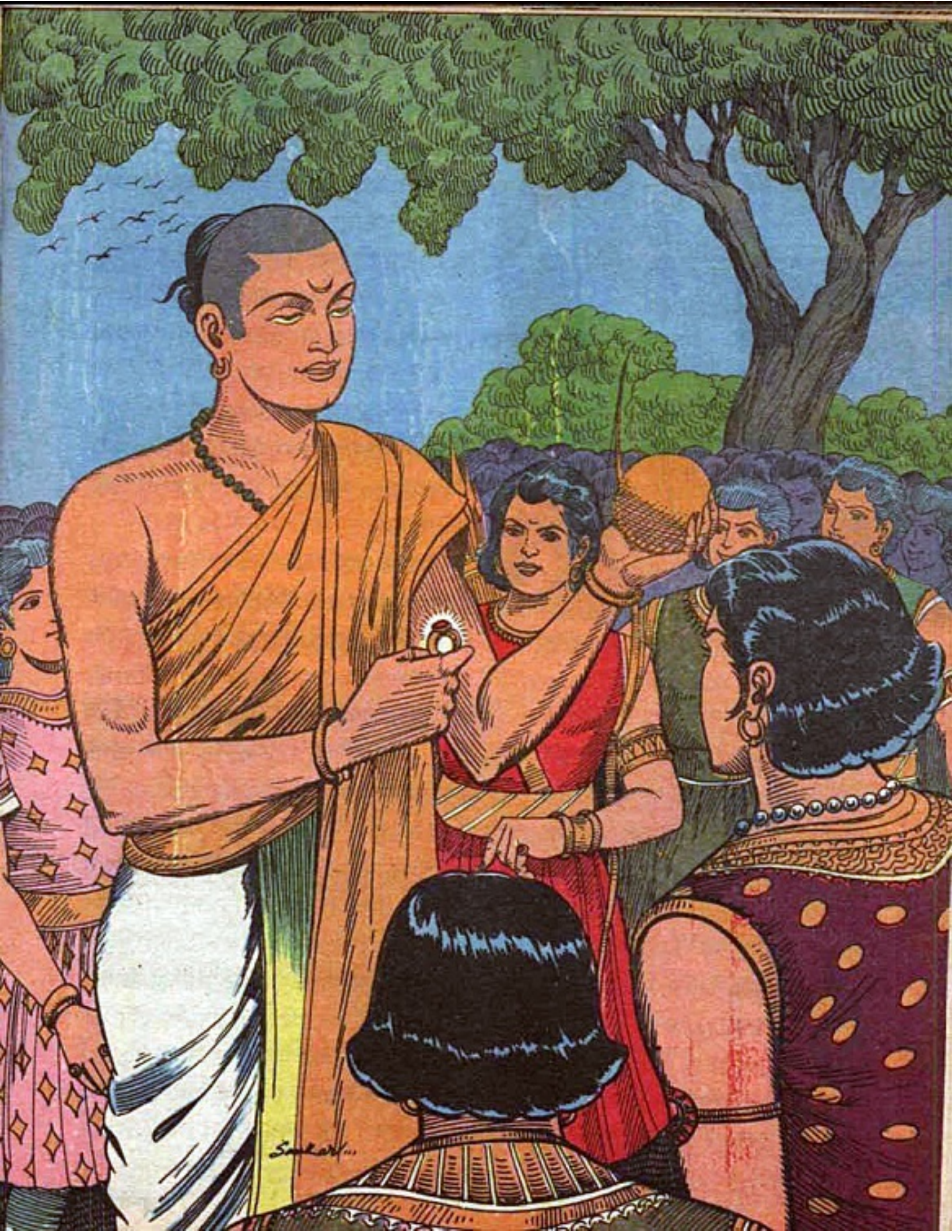
आजीवन आपके भोजन का प्रबंध करेंगे"।

"देखना, यह कार्य मैं कितनी सुगमता से करूँगा।"

उसने धनुष और बाण अपने हाथ में लिये। एक बाण फेंका जो गेंद में जा घुसा। फिर एक बाण में दूसरा बाण घुसाता गया और उन बाणों की रस्सी से गेंद को बाहर निकाला। सब बालक चकित रह गये। वे उत्साह से चिल्ला पड़े "अंगूठी भी निकालो"।

द्रोण ने मंत्र पढ़ा और अंगूठी को निशाना बनाकर बाण छोड़ा। फिर गेंद की तरह उसे भी ऊपर खींचा।

द्रोण की इस अद्‌भुत धनुर्विद्या को देखकर सब बालक अवाक् रह गये। सब ने एक साथ

था कि मैं कृपाचार्य की बहन से शादी करूँ। वे यह आदेश देकर परलोक सिधारे। मैंने पिता की आज्ञा का पालन किया। अश्वथ्थामा को जन्म दिया। मेरे बेटे की ज़िद थी कि अपने साथी बालकों की तरह वह भी गाय का दूध पिये। मुझे कमाना नहीं आता था, इसलिए अपने बेटे की इच्छा की पूर्ति के लिए पानी में आटा मिलाता था और उसे ही दूध कहकर पिलाता था। उसने भी उसे दूध ही समझकर पिया और संतुष्ट हुआ। मेरे आश्रमवासियों ने मेरी दरिद्रता को देखकर मुझे धिक्कारा। तब मुझे अपने सहपाठी द्रुपद की याद आयी। बचपन में वह मुझसे कहा करता था कि अगर साम्राज्य मेरे हाथ आया तो उसे मैं तुम्हें दे दूँगा। मैं पाँचाल देश गया, उसकी

सहायता पाने। मैने अपनी दोस्ती और बचपन के दिन उसे याद दिलाये। किन्तु सम्राट बनने के बाद वह सत्ता के नशे में चूर था। गर्व उसकी नस-नस में व्याप्त हो गया था। उसने यह कहकर मेरी खिल्ली उड़ायी कि एक दरिद्र ब्राह्मण से मेरी कैसी दोस्ती ? उसने मुझे पहचानने से भी अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि भूखे हो तो एक वक़्त का खाना खाकर जाओ। मेरे अभिमान को धक्का लगा। पत्नी और बच्चे को लेकर कुरुदेश आया हूँ। आपके बुलाने पर यहाँ आया हूँ। कहिये, मेरे लिए क्या आज्ञा है?''

''आपके कुरुदेश आने से मेरे बालकों का कल्याण हुआ है। मैं तो कहूँगा कि यह उनका सौभाग्य है। आपके लिए आवश्यक समस्त सुविधाओं का प्रबंध करूँगा। आप ही को सम्राट मानकर आपकी आज्ञाओं का हम पालन करेंगे।'' भीष्म ने सविनय कहा। कुछ दिनों के बाद कौरव और पाँडव कुमारों को विद्या सिखाने द्रोण के सुपुर्द किया।

द्रोण ने सब बालकों को बिठाकर उनसे कहा ''धनुर्विद्या सिखाने के बाद आप को मेरा एक काम करना होगा।'' किसी ने कुछ नहीं कहा। केवल अर्जुन उठ खड़ा हुआ और कहा ''गुरुदेव, आप जो भी कहेंगे, करूँगा।''

द्रोण बहुत प्रसन्न हुआ। अर्जुन का आलिंगन करते हुए उसे बहुत बार चूमा।

द्रोण के पास कौरव-पाँडवकुमार ही शिक्षा प्राप्त नहीं कर रहे थे बल्कि हस्तिनापुर के निवासी यादव भी धनुर्विद्या सीख रहे थे।

सूत के यहाँ पला कर्ण भी द्रोण का शिष्य

था। तब से कर्ण दुर्योधन को बहुत चाहता था। मौक़ा जब भी हाथ में आये, वह पाँडवों का मज़ाक उड़ाता था, उनका अपमान करता था।

शस्त्र-प्रयोग में समर्थ एकमात्र अर्जुन था। इसलिए द्रोण का विश्वास था कि धनुर्विद्या में अर्जुन भी उसी की तरह योग्य व समर्थ बनेगा।

द्रोण कभी-कभी एक काम किया करता था। सब शिष्यों को लोटे देता और उसमें पानी लाने को कहता था। अपने पुत्र अश्वथ्थामा को बड़ा मुँहवाला लोटा देता और अन्यों को छोटा मुँहवाला। लोटा लेकर जो पहले आते थे, उन्हें शस्त्र-विद्या के अनेक रहस्य सिखाता था।

अश्वथ्थामा अपने लोटे में शीघ्र ही पानी भरकर पहले आता था। अर्जुन ने यह बात जानी। वह वरुणास्त्र के प्रभाव से अपने लोटे को भी शीघ्र ही भरता था। इससे अश्वथ्थामा के साथ ही वह द्रोण के पास आ पाता था। अश्वथ्थामा के सीखे समस्त शस्त्र-विद्या के रहस्यों को उसने भी सीखा। इसलिए अश्वथ्थामा मन ही मन अर्जुन से ईर्ष्या करता था।

द्रोण के घर में एक दिन रात को सब शिष्य एक साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। ज़ोर की हवा चली तो दीप बुझ गया। किन्तु भोजन करने में कोई रुकावट नहीं आयी। अर्जुन ने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया और सोचा "अभ्यास के कारण ही तो अंधेरे में भी खा पा रहे हैं। तो फिर अंधेरे में भी धनुर्विद्या क्यों सीखी नहीं जा सकती ?"

एक दिन रात को धनुष की टंकार से द्रोण का निद्राभंग हुआ। उसने उठकर देखा कि अर्जुन अंधकार में धनुर्विद्या सीख रहा है। उसे बहुत आनंद हुआ। अर्जुन के गले मिलकर उसने कहा "पुत्र, मैं तुम्हें धनुर्विद्या में सुयोग्य बनाऊँगा। धनुर्विद्या में तुम जैसा प्रवीण कोई होगा ही नहीं।"

द्रोण ने अपना वचन निभाया। अर्जुन को उसने सिखाया कि रथों, हाथियों और घोड़ों के बीच में खड़े होकर कैसे बाण चलाना चाहिये। गदाओं से युद्ध करने की कला भी उसे सिखायी। छद्म युद्ध की कला भी सिखायी। यों युद्ध संबंधी सब रहस्यों को द्रोण ने अर्जुन को सिखाया और अर्जुन उन सब कलाओं में पारंगत हुआ।
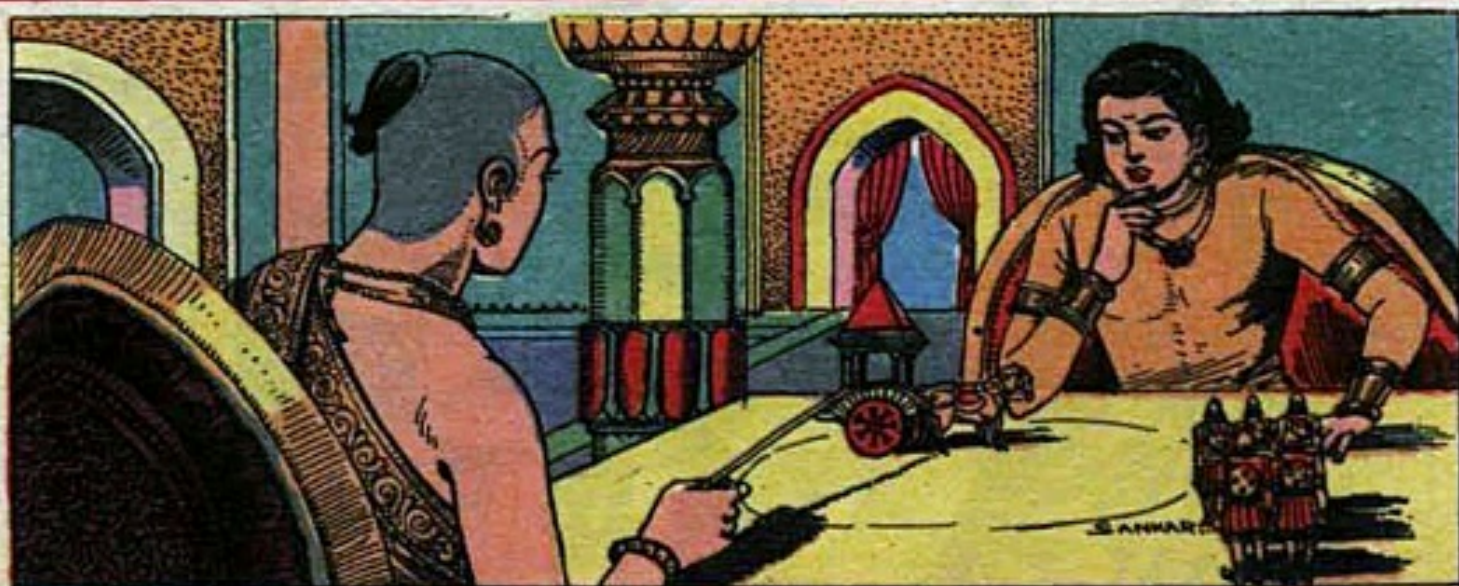
सफल योजना

गौरीपुर की गौरी झगडालू थी। पैसों की लालच की मात्रा भी उसमें आवश्यकता से अधिक थी। कमाई की चतुराई तो उसमें कम ही थी। क़िफायत से रहना उसे आता नहीं था। उसके दो बच्चे थे। उनके बचपन में ही उसका पति मर गया था। बची-खुची ज़मीन बेचकर उसने उनका पालन - पोषण किया। हाल ही में अपनी बेटी लक्ष्मी की शादी भी की। अब रही केवल गोपाल की शादी की समस्या।

गोपाल पढ़ा - लिखा था। वह कचहरी में अच्छी नौकरी भी कर रहा था। उस नौकरी की आड़ में उसकी माँ दहेज के रूप में ज़्यादा से ज़्यादा धन ऐंठना चाहती थी। वह चाहती थी कि दहेज में धन मिलने पर फिर से पैर पर पैर धरकर अपना जीवन आराम से गुज़ारूँ। इसलिए जो भी रिश्ता आता था, उसे धन के तराजू पर तोलती थी। यों कोई भी रिश्ता पक्का नहीं हो पाया, क्योंकि वह जितना दहेज चाहती थी, उतना वे दे नहीं सकते थे।

यह रहा माँ का स्वभाव, उसके सोचने का तरीक़ा। किन्तु गोपाल की आशाएँ और इच्छाएँ माँ से बिल्कुल ही भिन्न थीं। जिस गली में वह रहता है, उससे थोड़ी ही दूर निर्मला नामक लड़की रहती है। वह उससे शादी करना चाहता है। निर्मला अक़्लमंद है, फुर्तीली है और साथ ही वह सहनशील भी है। परंतु गोपाल का विचार था कि उसकी शादी निर्मला से आसानी से होनेवाली नहीं है। इसका कारण था, निर्मला के परिवार की आर्थिक स्थिति। अलावा इसके, उसकी माँ और निर्मला के पिता में कोई पुराने मन-मुटाव थे। दोनों में सदा झगड़े हुआ करते थे। वे दोनों एक दूसरे के कट्टर दुश्मन थे। उनकी दुश्मनी ढ़की आग की तरह थी। मालूम नहीं, कब भड़क उठे। इन दोनों कारणों से गोपाल को लगता था कि यह विवाह तो निरा सपना है। वह अपनी माँ के स्वभाव से भली-भाँति परिचित

था। किन्तु वह करे क्या? जो भी हो, वह माँ है। उसके प्रति उसके कुछ कर्तव्य भी हैं। पिताजी अगर ज़िन्दा होते तो बात कुछ और थी। माँ की देखभाल की ज़िम्मेदारी अब उसके कंधों पर है। इसलिए जान-बूझकर वह माँ के हृदय को ठेस पहुँचाना नहीं चाहता था। वह यह नहीं चाहता था कि माँ को अपने मन की बात कहकर उसे दुखी करूँ। इससे माँ अपने को अनाथ समझने लगेगी। माँ और पुत्र के संबंधों में कड़ुवापन भर जाएगा। इसलिए उसने अपने आप को संतुलित रखा और मार्ग ढूँढ़ने लगा कि किस प्रकार निर्मला से विवाह कर पाऊँगा।

गोपाल बहुत समय तक इस समस्या के परिष्कार का मार्ग ढूँढ़ता रहा। वह एक दिन निर्मला से एकान्त में मिला और उससे कहा "मेरी माँ का स्वभाव कितना भी बुरा, खोटा क्यों ना हो, आख़िर वह मेरी माँ है। मैं तो केवल भगवान से प्रार्थना मात्र कर सकता हूँ कि उसमें परिवर्तन आये। मेरी इस असहाय स्थिति में तुम मदद करोगी तो हमारा विवाह संभव हो सकता है। अगर तुम चाहती हो कि मैं तुमसे विवाह करके सुखी जीवन बिताऊँ तो मुझे तुम्हारा सहयोग चाहिये। मैं माँ को जान-बूझकर तक़लीफ़ पहुँचाना नहीं चाहता। अगर तुम मुझे सचमुच ही चाहती हो और मुझसे विवाह करने का तुम्हारा इरादा है तो तुम्हीं कोई उपाय सोचो"।

गोपाल का स्वभाव उसकी माँ की तरह कड़ुवा नहीं है। उसके शांत स्वभाव पर निर्मला भी रीझ गयी। विवाह के लिए अपनी स्वीकृति देते हुए उसने लज्जा से सिर झुका लिया और धीरे से बोली "उपाय किसी तरह सोचा जा सकता है, लेकिन इस उपाय को कार्यान्वित करने के लिए थोड़ी सी ही सही, सास को तक़लीफ़ पहुँचेगी, उन्हें दुखाना पड़ेगा।"

गोपाल ने हँसते हुए कहा "जब मैं जानता हूँ कि बीमारी अड़ियल हैतो कैसे कहूँ कि मीठी दवाइयों से ही उसे ठीक करना होगा। कड़ुवी दवाइयाँ भी इस्तेमाल में ले आने का तुम्हें अधिकार है"।

निर्मला उसकी बातों से जान गयी कि वह उसे कितना चाहता है, उसपर कितना मरता है।

मन ही मन उसे धन्यवाद दिया और कृतज्ञता भरी दृष्टि से उसे देखती हुई बोली "जितना जल्दी हो सके, उपाय सोचूँगी और तुम्हें ख़बर भेजूँगी"।

इसके दो तीन दिनों के अंदर ही निर्मला ने अपने पिता से सलाह मशविरा करके एक योजना बनायी। गोपाल ने इस योजना के लिए अपनी स्वीकृति भी दे दी।

इसके एक सप्ताह के अंदर एक विचित्र घटना घटी।

एक दिन सबेरे घर के आँगन में पानी छिडकने और रंगोलियाँ सजाने जब निर्मला आयी तो उसने देखा कि एक वृद्ध साधु अचेत पड़ा हुआ था। निर्मला ने तुरंत अपने पिता को बुलाया और दोनों मिलकर साधु को अंदर ले गये। उसकी सेवा - शुश्रूषा की।

दो दिनों में साधु स्वस्थ हो गया। क्रमशः उसके बारे में विवरण मालूम होते गये, जो यों हैं।

साधु का नाम था करुणाकर। उसकी उम्र है एक सौ पच्चीस साल। गत एक सौ दस सालों से हिमालय-पर्वतों में एकांत जीवन बिता रहा था। बहुत ही महिमावान भी है। दो सालों में निर्वाण प्राप्त करनेवाला है। अपने गुरु के आदेशानुसार अपनी सारी महिमाओं को इस अवधि केअंदर पुण्यवानोंऔर दयालुओं को समर्पित करनेवाला है। इसी काम पर वह पैदल चल पड़ा है। थकावट तथा वृद्धावस्था के कारण निर्मला के घर के आँगन में बेहोश गिर गया था।

वृद्ध संबंधी सारे विवरण थोड़ी ही देर में सब को मालूम हो गया। कुछ ग्रामीण फल-फूल लेकर उसका दर्शन करने आये। एक-दो अच्छे लोगों को ही उनके साथ बातें करने का सौभाग्य मिला। उनमें से एक था गौरी के घर के सामने का आसामी गंगाधर। गंगाधर पर साधु की कृपा-दृष्टि हुई। उसने गंगाधर को वचन भी दिया कि उसे किसी महिमा का रहस्य बताएँगे।

यह बात गौरी के कानों में पड़ी। पहले वह निर्मला के पिता राम के घर जाने से हिचकिचायी। किन्तु उसने वहाँ जाने का निश्चय किया, क्योंकि वह साधु का दर्शन करना चाहती थी। उससे प्रार्थना करना चाहती थी कि मेरे घर में भी

पधारें। उसने सोच भी रखा था कि साधु घर आयेंगे, तो उनकी सेवा करूँगी और कोई महिमा उनसे प्राप्त करूँगी।

जिस दिन गौरी राम के यहाँ गयी, उस दिन साधु का दर्शन नहीं हो पाया। वह ध्यान-मग्न था और निर्मला को किसी मंत्र का उपदेश दे रहा था। उसके पिता राम की बातों से मालूम हुआ कि साधु निर्मला को महालक्ष्मी मंत्र का उपदेश दे रहे हैं। साल में एक ही बार आनेवाले मूला नक्षत्र युक्त पूर्णिमा शुक्रवार के दिन उस मंत्र को आठ बार जपने पर, घर के हर कोने में एक सौ आठ सोने की अशर्फियाँ उपलब्ध होंगीं।

यह सुनते ही निर्मला को अपनी बहू बनाने की इच्छा गौरी में जगी। इतने में मालूम भी हुआ कि घर के अंदर का कांड समाप्त हुआ है। गौरी अंदर गयी और साधु को साष्टांग नमस्कार किया। उससे प्रार्थना की कि वे अपने घर पधारें।

साधु मुस्कुराता हुआ बोला "अब यह संभव नहीं है। गुरु की आज्ञा है कि किसी भी स्थल पर एक सप्ताह से अधिक ना रहूँ। छह महीनों में अर्थात आनेवाले श्रावण माह में निर्मला महा-लक्ष्मी मंत्र का पठन करनेवाली है। उसका आग्रह है कि मैं गुरु होनेके नाते उस अवसर पर अवश्य आऊँ और मेरी अध्यक्षता में पूजा - कार्यक्रम संपन्न हो। तब अवश्य ही तुम्हारे घर भी आऊँगा।" गौरी ने विनयपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा "आपकी कृपा स्वामी। मेरी एक छोटी-सी इच्छा है"।

"बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है?' साधु ने पूछा।

"आपकी प्रिय शिष्या निर्मला को मैं उसके बचपन से ही चाहती हूँ। स्वामी, उसे अपनी बहू बनाने की मेरी तीव्र इच्छा है। किन्तु उसका पिता मेरा आदर नहीं करता" गौरी ने कहा।

गौरी की बातें सुनते ही साधु थोड़ी देर तक अपनी आँखें बंद करके मौन रहा और फिर बोला "गोपाल तुम्हारा इकलौता बेटा है। वह कचहरी में नौकरी कर रहा है। मैने ठीक कहा ना?"

"हाँ स्वामी" आनंदपूर्वक उसने उत्तर दिया।

साधु ने, बाहर किसी से बातों में लगे राम को अपने पास बुलाया और उससे कहा "राम,

इस गौरी का पुत्र उत्तम व सद्गुणी है। तुम्हारी पुत्री निर्मला के योग्य है"।

राम ने हाथ जोड़कर कहा "आपकी आज्ञा शिरोधार्य है स्वामी"।

एक महीने के अंदर ही गोपाल और निर्मला की शादी हो गयी। निर्मला अपने पति के घर परिवार बसाने आयी।आते ही उसने उजड़ा पिछवाड़ा कुलियों से साफ़ कराया और वहाँ तरह-तरह की तरकारियों के बीज बोये। उसी पिछवाड़े के कोने में एक झोंपड़ी लगवायी और दो भैंसें खरीदकर ले आयी। दूध का व्यापार भी करने लगी।

इस प्रकार चार महीनों के अंदर तरकारियों और दूध की बिक्री से काफ़ी धन मिला। गौरी ने इधर-उधर के कर्ज़ चुका दिये। अब उसके पास थोड़ा- बहुत धन भी है।

अपनी बहू निर्मला ने किसी मंत्र को जपे बिना ही धन कमाया, इसपर वह खुश हुई। किन्तु उसे उस श्रावणमास की प्रतीक्षा थी, जब कि वह महालक्ष्मी का मंत्र जपकर घर को सोने की अशर्फियों से भर देगी।

श्रावण मास में एक दिन तड़के ही करुणाकर राम और गंगाधर को को साथ लिये गौरी के घर आया। उसे देखते ही गौरी खुशी से फूल उठी। उसने अतिथि-सत्कार किया और उनको ठहराने के प्रबंधों में मग्न हो गयी। तब साधु ने गौरी से कहा "गौरी, तुम्हारा घर तो सौभाग्य से प्रकाशित हो रहा है। लगता है तुम्हारी बहू के मंत्र जपे बिना ही महालक्ष्मी का आगमन तुम्हारे घर में हुआ है"। कहते हुए उसने अपनी नक़ली दाढ़ी और जटाएँ निकाल दीं।

यह देखकर गौरी सन्नाटे में आ गयी। वह चिल्ला पड़ी "इतना बड़ा धोखा", वह कुछ और कहना चाहती थी तो करुणाकर के वेष में आये हुए साधु ने उसे रोकते हुए कहा "मुझे गाली देने से पहले अच्छी तरह देखो और हो सके तो पहचानने की कोशिश करो"।

गौरी ने उसे ग़ौर से देखा और सकपकाती हूई बोली 'आप?' कहती हुई उसने सिर झुका लिया।

तब उस वृद्ध ने शांतिपूर्वक कहा "तुमने मुझे पहचान लिया है ना?" वहीं खड़े गोपाल

की तरफ़ देखकर उसने कहा "बेटे, मैं तुम्हारे पिता का चाचा हूँ। उन दिनों में गाँव-गाँव में घूमकर नाटकों में अभिनय करता रहता था। मेरा यह काम मेरे भाई को अर्थात तुम्हारे दादा को क़तई पसंद नहीं था। मैं भी अपनी अभिरुचि छोड़ने तैयार नहीं था, इसीलिए यह गाँव छोड़कर दूसरा गाँव चला गया। अपनी वृद्ध सास और ससुर को सता - सताकर तुम्हारी माँ ने उन्हें घर से बाहर निकाल दिया। उस समय उनके पास एक खोटा सिक्का भी नहीं ता। वे मेरे पास आये और मैने उन्हें उनकी जीविका का आवश्यक प्रबंध किया। वे सुख से रहे। किन्तु अंतिम घड़ी तक अपने बेटे के लिए वे तरसते रहे।" कहते हुए वह रुक गया और गौरी की तरफ़ मुड़कर बोला "मैने जो कहा, उसमें रत्ती भर भी झूठ था?"

गोरी का चेहरा काँतिहीन हो गया और उसने अपना सिर मोड़ लिया। एक क्षण रुककर उस वृद्ध ने गोपाल से कहा "गंगाधर और राम को यह सारी सच्चाई मालूम है। तुमने निर्मला से विवाह करने का निश्चय करने के बाद वे ये दोनों मुझसे मिले। उन्होंने मुझे यह पात्र अदा करने के लिए मनाया। तुम तो जानते ही हो कि उसके बाद क्या हुआ। अब कुछ कहना है तो केवल तुम्हारी माँ से कहना।" गौरी की तरफ़ मुड़कर वह फिर बोला "तुमने अपनी सास और ससुर को बहुत सताया था। किन्तु निर्मला जैसी बहू पाकर तुम धन्य हो गयी हो। इसे तुम्हारा भाग्य ही कहना चाहिये। निर्मला के सद्गुणों को तुम जान सके, इसी के लिए मैने इन छह महीनों की अवधि तय की थी। कम से कम अब सुधर जाओ। अगर सुधरोगी नहीं तो निर्मला भी तुमसे वैसा ही व्यवहार करेगी, जैसा तुमने अपनी सास से किया था।"

गौरी को अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ। वह आँसू बहाती हुई बोली "मैं जान गयी कि मुझसे कितनी भारी भूल हुई है। आपके कहे मुताबिक निर्मला जैसी बहू को पाना मेरा भाग्य है। इन छह महीनों में ही मेरे घर की परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन लानेवाली मेरी बहू निर्मला सचमुच ही महालक्ष्मी है।"

गौरी के हृदय-परिवर्तन से सब खुश हुए।

अहंकार

बहुत समय के पहले की बात है। कुमुद नामक महर्षि विष्णु से वर प्राप्त करने घोर तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या से प्रसन्न विष्णु लक्ष्मी समेत प्रत्यक्ष हुए। कुमुद ने उन दोनों को साष्टांग नमस्कार किया। तब विष्णु ने उससे पुछा कि बोलो, तुम्हे क्या वर चाहिये?

कुमुद ने जब तपस्या का आरंभ किया था, तब उसके मन में कोई इच्छा नहीं थी। जब विष्णु वर देने सन्नद्ध हो गये तो वह निर्णय कर नहीं पाया कि क्या वर पूछूँ।

लक्ष्मी ने कुमुद की असहाय तथा असमंजस स्थिति को भाँपा और उससे कहा "वत्स, मैं तुम्हारी भक्ति से अति प्रसन्न हूँ। यह कोई आवश्यक नहीं है कि अभी का अभी कोई ना कोई वर पूछा जाए। हम पुनः एक माह के अंदर तुम्हें दर्शन देंगे। इस अवधि में भली - भाँति सोचो-विचारो। फिर कहना कि तुम्हें क्या वर चाहिये"।

लक्ष्मी की बातों से कुमुद ने अपने को संभाल लिया। दूसरे ही क्षण लक्ष्मी समेत विष्णु अदृश्य हो गये।

कुमुद को इस बात पर असीम आनंद हुआ कि उसकी तपस्या सफल हुई है। वह अपने आश्रम में लौटा और उसने यह शुभ समाचार अपने शिष्यों को बताया।

गुरु की अमोघ तपोशक्ति पर शिष्य आश्चर्य में डूब गये। साक्षात् महाविष्णु ही प्रत्यक्ष हुए, फिर भी उन्होंने कोई वर नहीं माँगा। उनके इस त्याग की वे भरपूर प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे कि इन चौदह भुवनों में ऐसा त्यागी और महाभक्त ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। इन प्रशंसाओं के वशीभूत कुमुद में अहंकार जागा। वह सोचने लग गया कि उससे श्रेष्ठ महर्षि इस पृथ्वी पर कोई है ही नहीं।

एक बार वह गंगा नदी में स्नान करने अपने शिष्यों समेत गया। वहाँ नदी में स्नान करके

पचीस वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

लौटते हुए रैवत नामक एक राजर्षि से उसकी भेंट हुई। उसके साथ उसकी पत्नी और दस संतान थी। कुमुद के शिष्यों को संदेह हुआ कि यह कैसा राजर्षि है, जो पारिवारिक बंधनों में बंधा हुआ है। अपने संदेह को दूर करने के लिए उन्होंने गुरु कुमुद से इस बारे में पूछा। तब कुमुद ने उनसे कहा ''मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है कि यह रैवत, राजर्षि कैसे कहलाया जा रहा है? वह कैसे इसके योग्य है। ऋषि को तो पारिवारिक बंधनों से दूर रहना चाहिये। लेकिन रैवत अपनी पत्नी और संतान के साथ आनंदमय जीवन बिता रहा है। कुछ ऐसे भी तपस्वी हैं, जो जंगलों में घूमते हुए कंद मूल-फल खाते हैं। क्या इन्हें खाने मात्र से भगवान के दर्शन हो जाएँगे। मेरी दृष्टि में ना ही ये ऋषि है और ना ही इनके तपोबल में शक्ति है। यह तो ऋषि हो ही नहीं सकते।'' उसकी बातों में चिढ़ थी।

कुमुद ने कह तो दिया, किन्तु अपने उत्तर से उसे ही आत्म - तृप्ति नहीं हुई। उसने सोचा, विष्णु का शीघ्र ही दर्शन करने जा रहा हूँ। उन्हीं से पूछकर अपने संशय का निवारण करूँगा। महीना होते ही लक्ष्मी समेत विष्णु प्रत्यक्ष हुए। कुमुद वर माँगने की बात भूल ही गया था। उसने विष्णु से राजर्षि रैवत के बारे में अपने संदेह पूछे।

इसपर विष्णु हँस पड़े और बोले ''कुमुद, मेरे प्रति भक्ति प्रधान है। मन अगर निर्मल नहीं रहा तो सन्यास स्वीकार करने से क्या होता है? अगर अपने संशय से पूर्ण रूप से निवृत्त होना चाहते हो तो एक कार्य करो। श्रीशैलगिरि के

पास स्वर्णाग्रहार है, जहाँ सुधर्म नामक एक व्यक्ति है। उससे जाकर मिलो'' कहकर अदृश्य हो गये।

कुमुद अपने शिष्यों सहित श्रीशैल निकल पड़ा। कुछ दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। शिष्यों के साथ पाताल गंगा में स्नान करने गया। जब वे स्नान कर रहे थे, तब एक मगर ने कुमुद का पैर पकड़ लिया।

शिष्यों ने अपने गुरु की यह हालत देखकर ज़ोर-ज़ोर से भयभीत हो, चिल्लाया। किन्तु कुमुद निड़र होकर उस मगर को तीव्र दृष्टि से देखने लगा। उसकी तपोशक्ति के कारण मगर छटपटाकर मर गया। इस घटना से कुमुद में अहंभाव की मात्रा और बढ़ गयी।

'दो दिनों के बाद कुमुद स्वर्णाग्रहार पहुँचा। वहाँ उस समय सुधर्म घर पर नहीं था। उस समय सुधर्म की पत्नी दरवाज़े के पास बैठकर एक फटी पुरानी साड़ी में पैबंदें लगा रही थी। कुमुद को उसने देखा और उससे कहा कि वह पति के आते तक बाहर के चबूतरे पर बैठे।

कुमुद उस स्त्री के व्यवहार से क्रोधित हुआ। उसे लगा कि एक महर्षि का अनादर हुआ है। दरवाज़े के पास बैठी सुधर्म की पत्नी को उसने तीव्र दृष्टि से देखा। किन्तु वह मगर की तरह छटपटाकर मरी नहीं। ज़मीन पर गिरी भी नहीं।

इससे कुमुद को अपनी तपोशक्ति पर थोड़ा संदेह हुआ। इतने में सुधर्म वहाँ आया। उसने अतिथियों का स्वागत किया और घर के अंदर ले गया। थोड़ी ही देर में सुधर्म की पत्नी ने रसोई

बनायी और उन्हें भोजन परोसा।

कुमुद भोजन करने आसन लगाकर बैठ गया। किसी कारण पदार्थ ठंडे थे। इसपर वह बहुत नाराज़ हो गया। उसने व्यंग भरे स्वर में कहा "सुधर्म, खाने के पदार्थ गरम कम हैं"।

सुधर्म ने कुमुद के व्यंग्य को ताड़ा। उसने कहा "स्वामी, तो मैं अपने हाथ से यह तालवृंत चलाऊँगा।" कहते हुए वह तालवृंत चलाने लगा।

पल भर में कुमुद के सामने के पत्ते में परोसे गये खाने के सब पदार्थ गरम हो गये। कुमुद को बहुत ही आश्चर्य हुआ।

भोजन समाप्त करके जब वह शिष्यों सहित हाथ धोने कुएँ के पास गया, तो एक और घटना ने उसके मन में खलबली मचा दी। कुएँ की घिरनी पर लटकी आधी रस्सी और कुएँ के बीच में पानी से भरी बाल्टी को उसने देखा।

"पानी खींच रही थी तो मेरे पति ने मुझे बुलाया। जल्दी में वैसे ही छोड़कर मैं चली गयी।" वहाँ आयी सुधर्म की पत्नी ने हँसती हुई कुमुद से कहा।

कुमुद को इस बात का अहंकार था कि उससे बड़ा तपस्वी कोई है ही नहीं। वह तो समझता था कि परिवार के गर्त में गिरे हुए लोगों का कोई अस्तित्व ही नहीं। वे नहीं के बराबर हैं। इस घटना से उसका गर्व-भंग हुआ।

हाथ जोड़कर उसने सुधर्म से कहा "आप महात्मा हैं। क्या उन्हें भी मोक्ष मिलता है, जिन्होंने सब कुछ त्याग नहीं दिया? जो मोह-माया से बाहर नहीं निकल पाये? जो पारिवारिक बंधनों में बंधे हुए हैं?"

सुधर्म ने कहा "निर्मल मन से कहीं से भी भगवान की पूजा की जा सकती है। ऐसे पवित्र लोगों को अवश्य ही मोक्ष मिलता है। जंगलों में रहकर कंद-मूल खाने मात्र से मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष-प्राप्ति के लिए निर्मल और पवित्र मन का होना आवश्यक है। उसके बिना तपस्या व्यर्थ है। ऐसे तपस्वियों के लिए भी मोक्ष-द्वार नहीं खुलते।"

इस प्रकार कुमुद का संदेह दूर हो गया। उसके अहंकार का भी नाश हो गया। उस दिन से निर्मल मन से वह भगवान का ध्यान करने लगा। इससे उसे मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

प्रकृति - रूप अनेक

ग्रहण-शक्ति

'राटिल स्नेक' नामक साँप, साधारणतया रातों में अपने आहार की खोज में जाता है। उस साँप की आँख और नाक के बीच में एक उतार है। इसके द्वारा वह ताप महसूस कर पाता है। ताप को स्पष्ट रूप से महसूस करने की वजह से वह अपने आहार को पकड़ पाता है।
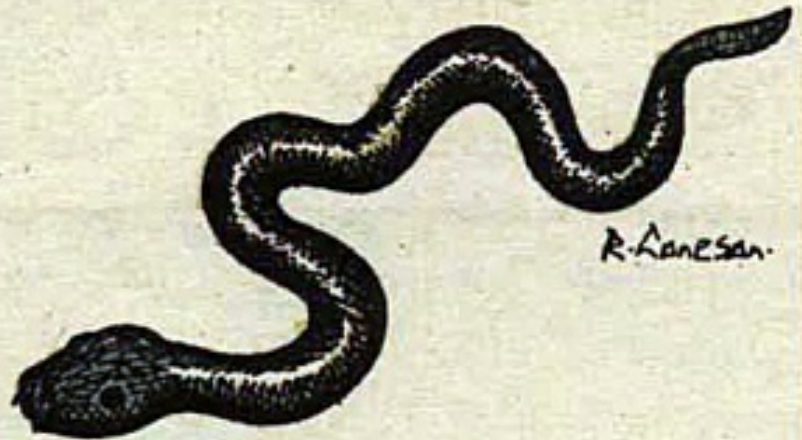
जंगली बिलाव

दक्षिणी अमेरीका के जंगलों में पाये जानेवाले जागुवार अमेरीका के सब जंगली बिल्लियों से बड़े हैं। इनका वज़न क़रीबन ३०० पौंड है। यह चीते से भी अधिक वज़नदार है। शरीर पर पीले तथा चर्म पर गोल आकार में काले धब्बे होते हैं।

कीड़े-मकोड़े जो पहले उड़े

विश्वास किया जाता है कि भूमि पर पतिंगे लगभग ३००,०००,००० वर्षों पूर्व जन्मे थे। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि सबसे पहले इन पतिंगों ने ही उड़ना सीखा। कुछ पतिंगों के पंखों की चौडाई ७० सें.मीटर है।

Say "Hello" to text books and friends
'Cause School days are here again
Have a great year and all the best
From Wobbit, Coon and the rest!

SUPER
RUBBER
It's time to go back to school again. Time for text
books. Time for games. Time to meet old friends.
And make new ones. Time to start studying
again. Because there's so much to learn about
the world around you.
From all of us here at Chandamama, have a
great year in school. And remember to tell us
what you've learnt everyday, when you
come home from school !
THE
CHANDAMAMA
COLLECTION
ARTIG1246

फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता :: पुरस्कार १००)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ, मार्च, १९९५ के अंक में प्रकाशित की जाएँगी।

S.G. Seshagiri

S.G. Seshagiri

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ १० जनवरी, '९५ तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) रु. १००/- का पुरस्कार दिया जायेगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर इस पते पर भेजें।

चन्दामामा, चन्दामामा फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता, मद्रास-२६.

नवंबर, १९९४, की प्रतियोगिता के परिणाम

पहला फोटो : **शंख दर्शाये भक्ति**

दूसरा फोटो : **बिगुल दिखाये शक्ति**

प्रेषक : **नीरज सोनी, क्लॉथ मर्चेंट,**

बलाचौर - १४४५२१

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.